

हरिगंधा

साहित्यिक मासिकी

अंक : 343, मार्च, 2023

फाल्गुन-चैत्र 2079



हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला



औरतें बेहद अजीब होती हैं

लोग सच कहते हैं -

औरतें बेहद अजीब होती हैं

रात भर पूरा सोती नहीं

थोड़ा थोड़ा जागती रहती है

नींद की स्याही में

उंगलियां डुबो कर

दिन की बही लिखती

टटोलती रहती है

दरवाजों की कुंडियाँ

बच्चों की चादर

पति का मन..

और जब जागती हैं सुबह

तो पूरा नहीं जागती

नींद में ही भागती हैं

सच है, औरतें बेहद अजीब होती हैं

हवा की तरह घूमतीं, कभी घर में, कभी बाहर...

टिफिन में रोज़ नयी रखतीं कविताएँ

गमलों में रोज़ वो देती आशाएँ

पुराने अजीब से गाने गुनगुनातीं

और चल देतीं फिर

एक नये दिन के मुक़ाबिल

पहन कर फिर वही सीमायें

खुद से दूर हो कर भी

सब के करीब होतीं हैं

औरतें सच में, बेहद अजीब होती हैं

कभी कोई ख़्वाब पूरा नहीं देखतीं

बीच में ही छोड़ कर देखने लगतीं हैं

चुल्हे पे चढ़ा दूध...

कभी कोई काम पूरा नहीं करतीं

बीच में ही छोड़ कर ढूँढने लगतीं हैं

बच्चों के मोजे, पेन्सिल, किताब

बचपन में खोई गुडिया,

जवानी में खोए पलाश,

मायके में छूट गयी स्टापू की गोटी,

छिपन-छिपाई के ठिकाने

वो छोटी बहन छिप के कहीं रोती...

सहेलियों से लिए-दिये..

या चुकाए गए हिसाब

बच्चों के मोजे, पेन्सिल किताब

खोलती बंद करती खिड़कियाँ

क्या कर रही हो ?

सो गयी क्या ?

खाती रहती झिड़कियाँ

न शौक से जीती है ,

न ठीक से मरती है

सच है, औरतें बेहद अजीब होती हैं ।

कितनी बार देखी है...

मेकअप लगाये,

चेहरे के नील छिपाए

वो कांस्टेबल लडकी,

वो ब्यूटीशियन,

वो भाभी, वो दीदी...

चप्पल के टूटे स्ट्रैप को

साड़ी के फाल से छिपाती



हरिगंधा

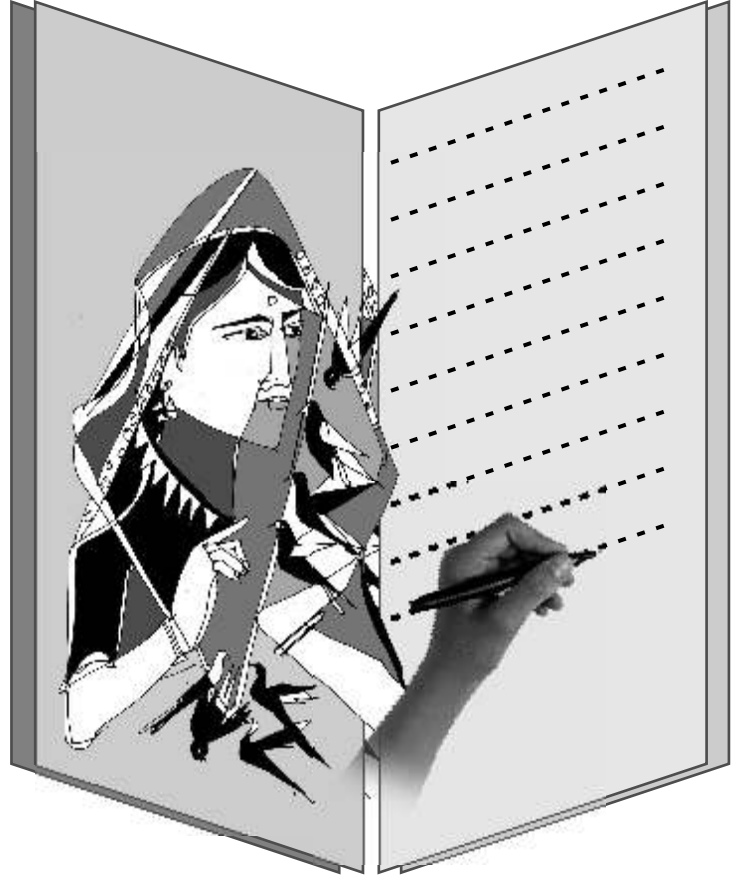
साहित्यिक मासिकी
अंक : 343, मार्च, 2023
फाल्गुन-चैत्र 2079

- प्रधान संरक्षक एवं अध्यक्ष
मनोहर लाल
मुख्यमंत्री, हरियाणा
- प्रधान सम्पादक
अनुराग अग्रवाल, भा.प्र.से.
प्रधान सचिव, हरियाणा सरकार
सूचना, जनसंपर्क व भाषा विभाग
एवं कार्यकारी उपाध्यक्ष, अकादमी
- प्रबंध सम्पादक
डॉ. अमित अग्रवाल, भा.प्र.से.
महानिदेशक, सूचना, जनसंपर्क एवं भाषा
- सम्पादक
डॉ. चन्द्र त्रिखा
निदेशक, हरियाणा साहित्य अकादमी
- सम्पादन सहयोग
मुकेश लता
- टंकण व साज-सजा
दिनेश कुमार
- वार्षिक चन्दा : 150 रुपये
- एक प्रति : 15 रुपये

संपादक तथा हरियाणा साहित्य अकादमी का लेखकों के विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है। ये उनके अपने विचार हैं।

सम्पर्क :

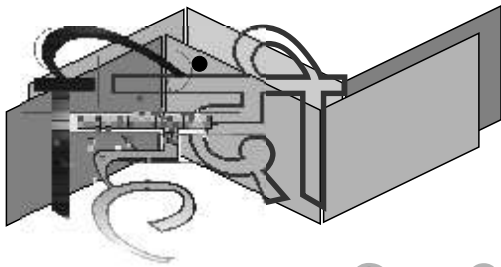
निदेशक, हरियाणा साहित्य अकादमी
अकादमी भवन पी-16, सेक्टर 14
पंचकूला - 134113 (हरियाणा)
दूरभाष : 0172-2565521, 2581807
वेबसाईट : haryanasahityaakademi.in
ई-मेल : harigandhapatrika@gmail.com



महिला रचनाकार विशेषांक

इस अंक में

संपादकीय	3	० डॉ. रमाकांता	31
अतिथि संपादकीय : कमल कपूर	4	० संगीता बैनीवाल	32
विशेष		० डॉ. सुरेखा शर्मा	32
० कभी न खत्म होने वाली व्यथा गाथा	5	० वीणा अग्रवाल	33
धरोहर		० शकुन्तला मित्तल	33
० लल्लेश्वरी : डॉ. चन्द्र त्रिखा	8	० शारदा मित्तल	34
आलेख		० नीरू मित्तल 'नीर'	34
० स्मित-रेखा और संधि-पत्र : डॉ मुक्ता	11	० प्रीति पाठक	35
० नारी : आज की स्थिति का सच	14	० शिखा श्याम राणा	35
डॉ संतोष गोयल		० रोजलीन	36
० आधी आबादी का सफ़र ज़ारी है :	16	० लाज कौशल	36
डॉ. अंजु दुआ 'जैमिनी'		० शकुन्तला काजल 'शकुन'	37
साक्षात्कार		० डॉ. राजकला देशवाल	37
० डॉ. मैत्रेयी पुष्पा : प्रस्तुति- माधुरी मिश्रा	18	० पूनम जोशी	37
० वर्षा खनगवाल : प्रस्तुति- रश्मि	21	० चाँदनी केशरवानी सुगंधा	38
काव्य		० कमलेश गोयत	38
० धीरा खंडेलवाल	23	० सुशीला जांगड़ा	38
० सुमेधा कटारिया	23	० सुरेखा यादव	39
० डॉ कुमुद बंसल	24	० सविता गर्ग 'सावी'	39
० मीरा गौतम	24	कहानी	
० डॉ. शमीम शर्मा	25	० दिहा : सुदर्शन रत्नाकर	40
० वन्दना यादव	25	० एक फैसला मेरे हाथ : डॉ. शील कौशिक	44
० डॉ उषा लाल	26	० अहा खुशी : डॉ. इंदु गुप्ता	47
० कमलेश मलिक	26	० अस्तित्व- एक किरण : कमल कपूर	52
० डॉ रश्मि बजाज	27	० अदृश्य दीवार : आशमा कौल	55
० नमिता राकेश	27	० प्रकृति बनाम स्त्री : दलवंती	57
० भावना सक्सेना	28	व्यंग्य	
० ब्रजबाला गुप्ता	28	० सैर जनाना डिब्बे की : उर्मि कृष्ण	60
० अंजलि 'सि.फ़र'	28	लघुकथाएँ	
० मंजीत 'मीरा'	29	० अनघा जोगलेकर	13
० सीमा यादव	29	० दिव्या शर्मा	20
० शीला गहलावत	29	० डॉ. सुषमा गुप्ता	22
० किरण यादव	30	० डॉ. दुर्गा सिन्हा	62
० अलका शर्मा	30	पुस्तक समीक्षा	63
० राजकरनी अरोड़ा	31		



हिन्दी, ए-आई और यह अंक

य

ह अब स्पष्ट हो चुका है कि इस बार विश्व हिन्दी सम्मेलन में मुख्य विचारणीय मुद्दा “हिन्दी: फ्रॉम ट्रेडिशनल नॉलेज टु ऑर्टिफिशियल इंटेलिजेंस” रखा गया था।

पढ़ने, देखने व सुनने में यह एक सुखद एवं विकासोन्मुख विषय है, मगर संदेह के बादल मंडराने लगे हैं। पहला संदेह इसी बात पर है कि यह विषय किसी हिन्दी-लेखक या हिन्दी भाषाविद् ने सुझाया होगा। सभी प्रेस विज्ञप्तियों में विषय की भाषा भी अंग्रेजी रखी गई, मानो अनुवाद असंभव लगा हो।

यदि हमारा भाषागत चिंतन आने वाले समय के साथ जुड़ता है तो यह वस्तुतः सुखद है। मगर तथ्य यह है कि आज भी देश की हिन्दी पट्टी के अधिकांश पाठक इस विषय से पूरी तरह अनभिज्ञ हैं। यहां तक कि हिन्दी के प्रकाशक-वर्ग में भी इस विषय पर कहीं कोई प्रकाशित सामग्री उपलब्ध नहीं है। भाषा के प्रश्न पर हुई गडमड में हमारे समक्ष धीरे-धीरे ‘ट्रेडिशनल नॉलेज’ का स्वरूप भी कतई स्पष्ट नहीं है। अंग्रेजी पत्रकारिता में ‘ए-आई’ अर्थात् ‘ऑर्टिफिशियल इंटेलिजेंस’ की चर्चा पिछले लगभग एक दशक से जारी है। पुस्तक भी ढेरों हैं और इंटरनेट भी अटा पड़ा है। मगर हिन्दी में अभी कमोबेश खालीपन है। भाषा अब रोबोट-युग में प्रवेश कर चुकी है।

सूचना क्रांति के इस युग में हम वेब पत्रकारिता व डिजिटल-पत्रकारिता में प्रवेश कर चुके हैं मगर अब भी पाठक या श्रोता या दर्शक इससे ज्यादा परिचित नहीं हैं। हिंदी को न्यायपालिका ने कितना अपनाया है। चिकित्सा-शिक्षा व अन्य तकनीकी विषयों पर हिंदी कहां तक पहुंची है, यह भी अभी अस्पष्ट व धुंधला है। ऐसे माहौल में हिंदी में वैश्विक स्तर पर ‘ए-आई’ के लिए स्थान की तलाश आसान नहीं है। अभी भी ‘ए-आई’ से परिचय स्थापित करना, हिंदी के लेखन की दुनिया में संभव नहीं हो पा रहा। उत्तरप्रदेश, बिहार, हरियाणा, राजस्थान, उत्तराखण्ड, मध्यप्रदेश व हिमाचल को छोड़कर शेष भारत, विशेष रूप से दक्षिणी भारत में हम ‘हिन्दी के प्रति’ चिढ़ और ऊब को भी समाप्त नहीं कर पाए। ऐसा नहीं कि हमें कारण पता नहीं है। मगर कहीं न कहीं हम उलझे हुए हैं, दिशाहीन हैं और

अस्पष्ट हैं।

मुख्य विचारणीय विषय, ‘वैश्विक स्तर पर हिंदी की स्वीकार्यता में अभी भी हम चौथे स्थान पर हैं। खींचतान के बाद कई बार तीसरे स्थान की दावेदारी भी ठोंक ली जाती है, मगर बात बन नहीं पा रही।’

महिला लेखन पर केंद्रित विशेषांक आपके समक्ष है। इसी संदर्भ में बहुत कुछ कहा जाना व लिखा जाना शेष है। इसी क्रम में दूसरा विषय महिला विमर्श पर केन्द्रित है।

75 बरस बीत गए। तलाश अब भी जारी है। तलाश उन सगे भाइयों की जो 75 बरस पहले भारत-विभाजन के समय बिछुड़ गए थे। कैसे बिछुड़े थे, अपनी अम्मा-बापू से और बूढ़ी औरतें अपने परिवारों से बिछुड़ी थीं। ऐसे भी क्रिस्से मिले थे, जहां कुछ भागते हुए लोगों ने स्वयं ही अपने ऐसे बुजुर्गों को घरों में तालाबंद कर दिया था जो अपने परिवारों के साथ काफिलों में चल नहीं सकते थे। अभी तक अपहृत एवं लापता महिलाओं की ठीक-ठाक संख्या अज्ञात है। दस्तावेजों में भी चिप्पियां, पैबंद लगे हैं। लियोनोर्ड मोसले नामक एक शोधार्थी पत्रकार का आकलन है कि यह आंकड़ा एक लाख के आसपास है। भारत सरकार द्वारा एकत्र आंकड़ों के अनुसार लापता एवं अपहृत महिलाओं की संख्या में हिंदू व सिख परिवारों से लगभग 33 हजार के बारे में शिकायतें दर्ज की गई थीं जबकि पाक सरकार के अधिकृत सूत्र दावा करते थे कि भारतीय क्षेत्रों में लगभग 50 हजार मुस्लिम औरतें लापता हुई थीं। एक सर्वेक्षक पत्रकार एंड्रयू मेजर का दावा है कि यह संख्या 40 से 50 हजार के मध्य थी और एक अन्य शोधार्थी मसरूत इसी आंकड़े को 60 हजार तक ले जाता है जबकि एक महिला ‘एक्टिविस्ट’ बेगम तसदुक हुसैन का अनुमान है कि यह संख्या 90 हजार के कम नहीं थी। इसी संदर्भ में एक विस्मृत लेख भीतर के पृष्ठों पर दिया गया है। घाव अभी भी नहीं भरे। टीस उठती रहती है। यह कभी न खत्म होने वाली व्यथा-गाथा है। इस पर अभी भी लिखा जाना शेष है। आशा है यह अंक आपको रुचिकर लगेगा।

-डॉ. चन्द्र त्रिखा



अपना सूरज खोज लिया है स्त्री ने...

च

हूँ ओर फूलों की बहार है.... सुरभित वासंती बयार बह रही है.... पलाश पुष्प दहक रहे हैं और खुशरंगों की फुहार है। ऐसे मीठे मौसम में, हर वर्ष की भांति इस वर्ष भी 'हरियाणा साहित्य अकादमी' आप सबके कर-कमलों में फिर एक अनुपम उपहार थमा रही है.... 'हरिगंधा' के 'महिला रचनाकार विशेषांक' के रूप में। मैं आभारी और कृतज्ञ हूँ, अकादमी के यश-सिद्ध निदेशक आदरणीय डॉ चंद्र त्रिखा जी की, कि उन्होंने इस विशिष्ट अंक के संपादन का कपास-कुसुम-सा कार्यभार मुझे सौंपा। अब आपको तय करना है कि उनके इस विश्वास पर मैं कितनी खरी उतर पाई।

मित्रों! बरसों पहले किसी चित्र-वीथिका में मैंने एक चित्र देखा था.... अंधेरे की चादर में लिपटी एक स्त्री, सुदूर चमकते एक प्रकाश-बिन्दु की ओर बढ़ रही है। चित्र का शीर्षक था 'शुरुआत', अर्थ स्पष्ट था कि स्त्री की अज्ञान के अंधियारे से निकलकर ज्ञान के उजियारे तक पहुँचने की यात्रा शुरू हो रही है किन्तु यह शुरुआत तो इस चित्र के अंकन से बहुत-बहुत पहले ही हो चुकी थी। इस संदर्भ में मैं तीन स्त्रीवादी क्रांतिकारी लेखिकाओं का उल्लेख करना चाहूँगी। सर्वप्रथम 1858 में जन्मी पंडिता रमाबाई अग्रिम पंक्ति में खड़ी हैं, जिनकी वर्ष 1887 में प्रकाशित पुस्तक 'हिन्दू स्त्री का जीवन' में तत्कालीन नारी समाज में व्याप्त समस्याओं का वर्णन है तो उनके निवारण के लिये सुझाव भी हैं। फिर वर्ष 1942 में, अन्याय के प्रति असहिष्णु और विद्रोहिणी छायावाद की प्रबुद्ध लेखिका महादेवी वर्मा जी का स्त्रीवादी निबंध-संग्रह 'शृंखला की कड़ियाँ' प्रकाशित हुआ, जिसमें नारी की दशा और दिशा का विश्लेषण करते हुए उन्होंने स्त्री-शिक्षा पर जोर देते हुए कहा था, 'स्त्रियाँ यदि शिक्षित होकर गृहस्थी के कामों से समय निकालकर साहित्य-सृजन भी करेंगी तो उन्हें आत्म-तुष्टि मिलेगी।' महादेवी जी की 'शृंखला की कड़ियाँ' के मुख्य बिन्दुओं की छाया फ्रांसीसी दार्शनिक

लेखिका सिमोन द बोउआर की तहलका मचा देने वाली पुस्तक 'द सेकेंड सेक्स' में भी दिखती है। उनकी एक उक्ति 'स्त्री पैदा नहीं होती बनाई जाती है', विश्व-भर में चर्चित हुई है।

स्त्री की उन्नति-प्रगति के द्वार खोलने के लिए सदियों से निरंतर 'गिलहरी प्रयास' हो रहे हैं। वृंदा करात कहती हैं 'जीना है तो लड़ना होगा।' सवाल है, 'किससे लड़ना है?' तो जवाब है, देश-जाति-समाज में व्याप्त कुरीतियों से, विसंगतियों से, नारी-अस्मिता के भक्षकों से और सबसे अधिक स्वयं से। अधिकारों की जंग अभी जारी है। निःसंदेह, परिस्थितियाँ बदली हैं और स्थितियाँ भी किन्तु इतनी नहीं कि उन पर गर्व किया जा सके। बहुत से प्रश्नों के उत्तर और उलझनों के सुलझाव आपको इस सुधी अंक की बुद्धिजीवी लेखिकाओं की रचनाओं में मिलने वाले हैं। यह हर्ष एवं गर्व की बात है कि न केवल हमारा हरित प्रदेश उर्वर है, इसका महिला साहित्यकारों द्वारा सृजित साहित्य भी अति समृद्ध है। प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत अंक आपके समक्ष है। मित्रों! कोई महिला यदि दो पंक्तियाँ भी लिखती है तो उसका सम्मान होना चाहिये क्योंकि वह अपनी अपरिहार्य दिनचर्या से समय चुराकर सृजन करती है।

अंततः हमारी यह कलमजीवी नारी-बिरादरी महादेवी जी की वंशज है। उनका कहना था कि अंधकार कुछ नहीं होता। यह सिर्फ आलोक का अभाव है, जिसे दूध से धोकर उजला नहीं किया जा सकता। एक छोटा सा दीपक भी सघन से सघन तिमिर को उजाले में बदलने की क्षमता रखता है। यह 1942 की बात थी। आज की नारी छोटे-छोटे दीपों से नहीं बहलती। उसे भरपूर रोशनी चाहिये इसलिए उसने अपने हिस्से का सूरज खोज लिया है, जो बारह-मास अहर्निश उसके बाहरी और भीतरी संसार में दमकता रहता है।

आप सबको यथायोग्य स्नेह-सम्मान अर्पित करते हुए, मंगल कामनाओं सहित।

-कमल कपूर



कभी न खत्म होने वाली व्यथा गाथा

7

5 बरस बीत गए। तलाश अब भी जारी है। तलाश उन सगे भाइयों की जो 75 बरस पहले भारत-विभाजन के समय बिछुड़ गए थे। कैसे बिछुड़े थे, अपनी अम्मा-बापू से और बूढ़ी औरतों अपने परिवारों से बिछुड़ी थीं। ऐसे भी किस्से मिले थे। जहां कुछ भागते हुए लोगों ने स्वयं ही अपने ऐसे बुजुर्गों को घरों में तालाबंद कर दिया था जो अपने परिवारों के साथ काफिलों में चल भी नहीं सकते थे।

अभी तक अपहृत एवं लापता महिलाओं की ठीक-ठाक संख्या अज्ञात है। जो आंकड़े मिलते हैं उनमें भी जगह-जगह छेद हैं। दस्तावेजों में भी चिप्पियां, पैबंद लगे हैं। लियोनोर्ड मोसले नामक एक शोधार्थी पत्रकार का आकलन है कि यह आंकड़ा एक लाख के आसपास है। भारत सरकार द्वारा एकत्र आंकड़ों के अनुसार लापता एवं अपहृत महिलाओं की संख्या में हिंदू व सिख परिवारों से लगभग 33 हजार के बारे में शिकायतें दर्ज की गई थीं जबकि पाक सरकार के अधिकृत सूत्र दावा करते थे कि भारतीय क्षेत्रों में लगभग 50 हजार मुस्लिम औरतें लापता हुई थीं। एक सर्वेक्षक पत्रकार एंड्रयू मेजर का दावा है कि यह संख्या 40 से 50 हजार तक के मध्य थी और एक अन्य शोधार्थी मसरूट इसी आंकड़े को 60 हजार तक ले जाता है जबकि एक महिला 'एक्टिविस्ट' बेगम तसदुक हुसैन का अनुमान है कि यह संख्या 90 हजार से कम नहीं थी।

चर्चित पत्रकार एवं लेखिका उर्वशी बुटालिया का कहना है कि मुस्लिम स्त्रियों के स्थान पर हिंदू व सिख स्त्रियां कहीं अधिक पीड़ित हुईं और इनकी संख्या 25 हजार से 29 हजार तक हो है ही। ये उतने ही अउंकड़े हैं जितने कि अधिकृत रूप में दर्ज हुए।

नवम्बर 1948 में भारतीय प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू और पाक प्रधानमंत्री लियाकत अली खान ने एक लम्बी बातचीत के बाद संयुक्त वक्तव्य में घोषणा की थी कि लापता व अपहृत महिलाओं की पूरी जानकारी के इलावा ऐसे मामलों के बारे में भी सूचनाएं एकत्र होंगी जिनमें अपहरण के बाद धर्म-परिवर्तन कराए गए और ये सब प्रताड़ना, भय व आतंक के तहत ही हुआ था। दोनों प्रधानमंत्रियों ने उन्हीं दिनों लाहौर के मुख्य मार्गों पर एक खुली जीप में शहर में चक्कर भी लगाया था ताकि शांति व सौहार्द का कुछ माहौल बन सके।

उस रात नेहरू सो नहीं पाए। लाहौर के सरकारी अतिथि गृह में वे सारे प्रबंध किए गए थे जो राजनयिक रूप में एक विदेशी राष्ट्र के प्रधानमंत्री के लिए अपेक्षित थे। पाक-पंजाब की पुलिस उन दिनों दंगाग्रस्त क्षेत्रों में दंगाइयों से जूझ रही थी फिर भी एक छोटी सी पुलिस टुकड़ी भारतीय प्रधानमंत्री के सुरक्षा तंत्र का एक हिस्सा थी। प्रधानमंत्री लियाकत अली खान ने अतिरिक्त सुरक्षा कवच के रूप में पाक सेनाध्यक्ष से पंजाब रेजिमेंट की एक पलटन भी उस क्षेत्र में तैनात करवा दी थी।

दिनभर लियाकत अली खान के साथ खुली जीप में



लाहौर के दंगाग्रस्त क्षेत्रों से गुजरने के बाद नेहरू थक चुके थे। दोनों ने जो देखा, सुना, उसके बारे में दोनों की भाषा शायद थक गई थी। सांझ हो चुकी थी। मुख्य मार्ग से थोड़ा हटकर था यह राजकीय विश्राम गृह। लियाकत चाहते थे नेहरू वह रात उनके आवास पर ही गुजरें। मगर दिनभर के घटनाक्रम के बाद नेहरू एकांत में कुछ पल बिताना चाहते थे। बहरहाल, उस दिन नेहरू ने सिग्रेट सुलगाई और बरामदे में ही बेचैन से एक कोने से दूसरे कोने तक चक्कर लगाने लगे। दो चक्कर लगाने के बाद नेहरू को लगा कि टांगें जवाब दे रही थीं। वह बरामदे में ही एक आराम कुर्सी में धंस गए। सिग्रेट के कश लगाते-लगाते ही एकाएक उनके माथे पर पसीना झलक गया।

उस दोपहर वाली वह बुढ़िया उनके जेहन से गायब नहीं हो पा रही थी। जिस खुली कार में नेहरू व लियाकत दोनों सवार थे, एक बुढ़िया अचानक कहीं से निकलकर जीप के आगे आ गई थी। लियाकत अली के अंगरक्षकों ने उस बुढ़िया को हटाने का प्रयास किया तो नेहरू ने उन्हें टोका, 'इस माई को अपनी बात कहने दो' लियाकत ने भी इशारा किया। बुढ़िया को दोनों के पास लाया गया। उसकी आंखों में भय पसरा हुआ था। वह बोल नहीं पा रही थी। नेहरू ने उसके कंधे पर हाथ रखा और बोले, 'बोलो माई, बे-झिझक बोलो, क्या चाहिए?' बुढ़िया ने दोनों की ओर बारी-बारी से देखा, फिर कांपती आवाज़ में बोली, 'आप दोनों तो बहुत जहीन हो और दोनों ने खूब दुनिया देखी होगी। बंटवारा ही कराना था तो ज़मीनों जायदादों का करवा लेते। बंटवारे तो हमने भी सुने हैं मगर आबादियों के बंटवारे तो कभी नहीं सुने। और अगर बंटवारा करना ही था तो पूछ तो लिया होता, कौन कहां जाना चाहता है।' बुढ़िया एक पल के लिए रुकी। एकाएक उसका चेहरा तन

गया और वह चीखने लगी, 'लानत है तुम सब पर। खुदा मुआफ़ नहीं करेगा तुम सबको।' और यही अलफ़ाज़ चीखती-चीखती बुढ़िया तेज़ी से एक गली में घुस गई। वह डरी सी हुई थी कि उसे 'बड़े आदमियों' के पुलिसिया कारिंदे पकड़ लेंगे और फिर जेल में भिजवा देंगे। बुढ़िया की चीखों से दोनों 'सकते' की मुद्रा में थे। दोनों ने एक-दूसरे की सवालिया आंखों पर नज़र डाली और फिर एक ठंडी सांस छोड़कर काफिले को आगे बढ़ने का इशारा किया।

पाक पंजाब के गवर्नर सर फ्रांसिस मूडी और वहां के पहले मुख्यमंत्री नवाब इफ़्तखार हुसैन ममदोट भी पीछे वाली खुली कार में मौजूद थे। उन्होंने भी बुढ़िया की चीखें सुनी थीं। वे भी 'सकते' में थे। चीखती बुढ़िया का चेहरा सिग्रेट के धुएं में गायब हुआ तो लौटने से थोड़ा पहले उनकी कार को हाथ हिलाकर रोकने वाले बुजुर्ग का चेहरा नेहरू की आंखों के सामने आ गया। वह बुजुर्ग दोनों प्रधानमंत्रियों की ओर हाथ जोड़कर आगे बढ़ा और गिड़गिड़ाते लगे, 'पंडित जी। लियाकत साहब! मेरी बारह बरस की बेटी को कुछ गुण्डे उठाकर ले गए हैं। पंडित जी आप तो बहुत बड़े आदमी हैं। आप जो चाहें कर सकते हैं, बस मुझे मेरी बेटी दिलवा दीजिए।'।

तभी लियाकत अली खान ने अंगरक्षकों से उस बुजुर्ग को वहां से हटाने का इशारा किया। उन्हें लगता था, ये सिलसिला ज़्यादा चला तो सैकड़ों लोग सरकारी काफिले के गिर्द जमा होने लगेंगे। नेहरू को लगा, उसकी धड़कनें बढ़ने लगी थीं। उन्होंने सिग्रेट का एक लम्बा कश लिया और फिर उसे ऐश-ट्रे में फेंक

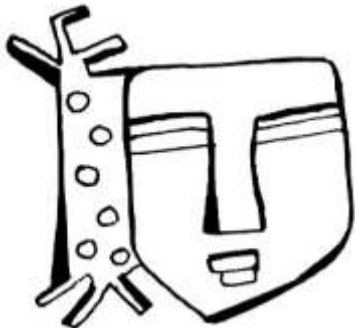




दिया। उन्हें वही लम्हा फिर से परेशान कर रहा था। उस दिन जब उन्होंने खुली कार में से सड़क से कुछ दूरी पर जलते हुए घर देखे तो उन्होंने लियाकत अली से पूछा, 'यह सब क्या हो रहा है लियाकत।' उत्तर मिला, 'हमारे लोग शायद पागल हो गए हैं। ऐसी तबाही के मंजर की उम्मीद तो कायदेआजम को भी नहीं थी।' नेहरू बोले, 'मगर एक शख्स को शायद थी। तभी वह बार-बार टोकता था। बापू को इलहाम हो चुका था।' लियाकत कुछ नहीं बोले, सिर्फ सिर हिला दिया। अब सब याद आ रहा था। मगर इतिहास के पहियों में 'रिवर्स-गेयर' नहीं होते। वह पूरी रात जागते ही कटी। उन्हें एक पल तो लगा शायद ऐसा गुनाह हो गया है, जिसकी सजा करोड़ों को भुगतनी होगी। मगर दूसरे ही पल उन्होंने स्वयं को संयमित किया। भीतर उम्मीद का एक दिया जलाया, 'हम मिलकर इन सदमों से सबको उबारेंगे। जब बेहतर जिन्दगी की शुरुआत होगी तो सभी गुनाह बख्शा दिए जाएंगे।'

उन दिनों दोनों देशों के मध्य 'सैंट्रल रिकवरी ऑफिस' स्थापित किए गए थे। दोनों केंद्र अपने-अपने क्षेत्रों में अपहृत औरतों की तलाश भी कर रहे थे। दोनों में सामाजिक संस्थाओं के लोग तो थे ही, पुलिस-संरक्षण भी उन्हें प्राप्त था। दोनों केंद्रों में शरणार्थी शिविर भी लगाए गए थे, जिनमें अपहर्ताओं से मुक्त कराई गई स्त्रियों को रखा जाता रहा और उनके सगे संबंधियों की तलाश का सिलसिला भी छेड़ा गया।

-सम्पादन डेस्क



मुझे नहीं चाहिए आजादी....

और आखिर वह दिन आ गया। मुझे लाहौर से बाहर बाघा-बार्डर पर छोड़ने चौधरी, आरिक, राही और साहिर भी आ गए। सब की आंखें नम भी थीं मगर साहिर और राही नमी के बावजूद मुस्करा भी रहे थे। एक अजीब सी रहस्यपूर्ण मुस्कान। मेरे मुंह से बस यही निकला, जिंदगी आखिर बंट गई। हमस भीक तेअ लगह तेनेम तेथ ठेड़ाव कल गा त भीग तेरखा सिपाही गुराया, 'अरे! तुम इधर आओ। तुम इतनी लम्बी बातें यहां पर नहीं कर सकते।' तब हम सब लोग बगलगीर हुए और मैं खामोशी के साथ उनसे विदा होकर उस तरफ चल दिया, जिधर ट्रकों पर लोग लादे जा रहे थे। गोरखा सिपाही मुझे अब भी घूरे जा रहा था। उसे अभी इस बात का प्रमाण कहां मिला था कि मैं भी 'मलेच्छ' नहीं था। बहरहाल, मैं शरणार्थी शिविर की ओर चल दिया।

रिफ्यूजी आ जा रहे थे। कुछ जोर-जोर से विलाप कर रहे थे। किसी की पुत्रवधु की आबरू लुट चुकी थी। यह सब उनकी आंखों के सामने घटा था। एक बूढ़ी जोर-जोर से चीखे जा रही थी कि तेईमुझेमेरेब च्चे, प तेतेल तेादे तेमुझेअ जादीन हीं चाहिए। अपने बच्चे वापिस चाहिए एक अधेड़ सी औरत उस बूढ़ी को हौसला दे रही थी, 'ओ बेबे! शुक्र कर तू तो धाड़ें मारकर अशक बहा रही हो, मेरी आंखों में अब अशक भी नहीं बचे।'

पूरे शरणार्थी शिविर में ऐस ही माहौल था। मैं एक कोने से दूसरे कोने तक चक्कर काट आया। सभी जगह रोती, छाती पीटती औरतें और दीवारों से सर टकराते लोग। एक जगह एक औरत अपने पल्लू में 'कुछ' उठाए एक लेडी डॉक्टर को कोट पकड़े चिल्ला रही थी, 'राम के नाम पर, कृष्ण भगवान के नाम, मेरे इस नन्हे बच्चे को बचा लो।' लेडी डॉक्टर उससे मुक्त होने के लिए छटपटा रही थी। करीब ही एकत्र लोगों व कैम्प-प्रबंधकों से वह कह रही थी, 'कोई मुझे इस पागल औरत की पकड़ से छुड़ाओ। इसका बच्चा मर चुका है और वह हठ कर रही है कि मैं बच्चे को बचा लूं।'

और इसी तरह के दृश्य आसपास बिखरे पड़े थे। मैं देख रहा था। बेबस था। एक बूढ़ा व्यक्ति घिसटता-घिसटता मेरे करीब आ गया। 'मुझे दो महीने होने लगे हैं धक्के खाते-खाते। कोई नहीं सुनता। मुझे लेने कोई नहीं आया और मेरी जेब में पैसे नहीं कि मैं अपने पैसों से मेरे 'अपनों' तक किसी बस में बैठ कर पहुंच सकूं।' मैं बेबस था। उसे ताकता रहा।

(फ़िक्र तौसवी के 7 नवम्बर, 1947 को प्रकाशित लेख का अंश)

लल्लेश्वरी



उ

से कई नामों से पुकारा गया था। लल्ला मां, लल्लेश्वरी, लल्ला योगेश्वरी, लाल दिदी, लाल देद, लालीश्री आदि। उन दिनों सल्तनत सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के हाथों में थी। तब श्रीनगर से लगभग 4.5 मील

(अब सात-आठ किलोमीटर) की दूरी पर स्थित पुरानाधिस्थान या पांडरेथान गांव में लल्लेश्वरी का जन्म एक कश्मीरी हिन्दू परिवार में हुआ था। देश के शेष भागों की तुलना में उन दिनों इस अंचल में स्त्रियों को उदारतापूर्वक शिक्षा देने की परंपरा सी थी। लल्लेश्वरी ने उन दिनों जो भी लिखा, वह इस बात की पुष्टि करता था कि उसे भी ठीक ठाक शिक्षा घर पर मिली थी।

मात्र 24 वर्ष की उम्र में वह सन्यासिन बन गई थी। उसने शैव-गुरु सिद्ध श्रीकण्ठ से गुरु मंत्र से लिया था। सिद्ध श्रीकण्ठ को इस इलाके की आंचलिक भाषा में 'सैद बायु' भी कहा जाता था। लल्लेश्वरी ने शैव साधना में अनेक ऊंचाइयां छू लीं थीं। शैव परंपरा की रहस्यवादी साधना के मार्ग पर वह निरंतर आगे बढ़ती गई।

यह वही समय था जब प्रमुख कश्मीरी सूफी शेख नुरुद्दीन वली भी चर्चा में थे। उन्हें नूरुद्दीन ऋषि या नुन्द ऋषि भी कहा जाता था। नुन्द ऋषि, लल्लेश्वरी से बेहद प्रभावित थे। कश्मीरी लोक संस्कृति में यह आख्यान भी प्रचलित है कि यही नुरुद्दीन ऋषि जो कि बाद में वहां ऋषि-परम्परा के जनक भी

माने गए, ने बचपन में अपनी मां का स्तन पान लेने से इन्कार कर दिया था। तब लाल देद या लल्लेश्वरी ने उन्हें मां की तरह स्तनपान कराया था। नुन्द ऋषि की संत परंपरा में उन दिनों के चर्चित सूफी संत 'रेश मीर साब' भी शामिल थे।

कुछ वर्ष पूर्व नई दिल्ली में लाल देद पर एक राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित हुई जिसमें 'आधुनिक संदर्भ में लाल देद' एक पुस्तक का लोकार्पण हुआ, शीर्षक था- 'ट्रायडिक मिस्टीसिज़्म'। इस कृति में सूफी-सम्प्रदायों व रहस्यमयी संत परंपरा के चर्चित अंग्रेजी विद्वान पॉल ई मर्फी ने 'लाल देद' को 'ट्रायडिज़्म' का एक प्रमुख सूत्रधार बताया। मर्फी के अनुसार नौवीं सदी के मध्य से लेकर 14वीं सदी के अंत तक लगभग 500 वर्ष की अवधि में कश्मीर में तीन अत्यंत महत्वपूर्ण आध्यात्मिक शख्सियतें उभरीं थीं। इनमें लल्लेश्वरी या लाल देद का विशिष्ट महत्व है। इनकी एक विशेषता यह भी थी कि ये किसी सम्प्रदाय-विशेष की सीमाओं से ऊपर उठी हुई शख्सियतें थीं। लगभग ७वीं सदी तक लल्लेश्वरी के जादू ने हिंदुओं और मुसलमानों में अपनी एकरूपता व समान स्वीकार्यकता को बांधे रखा। कोई भी धर्म या सम्प्रदाय-विशेष उसे अपने सीमित रंग में रंग नहीं पाया। वर्ष 1980 के आसपास कश्मीर में फैले आतंकवाद अथवा कट्टरपंथ के बावजूद उसे किसी ने लल्ला योगिनी के रूप में अपनाए रखा तो किसी ने लल्लेश्वरी के रूप में और किसी ने 'लाल-आरिफ़ा' के रूप में अपनाया।



विद्वानों व श्रद्धार्थियों ने भी स्वीकार किया कि यह कश्मीरी रहस्यवादी आध्यात्मिक शिष्य उस पूरे अंचल में भक्ति-आंदोलन, सूफीवाद और परंपरागत रहस्यवादी आध्यात्म के मिश्रित रूप में जानी जाती रहीं।

उसकी शुरुआती जिंदगी के बारे में तरह-तरह की कहानियाँ, किंवदंतियों एवं आख्यानों के रूप में प्रचलित रही। एक चर्चित किस्सा यह भी था कि 12 वर्ष की उम्र में ही उसका विवाह हो गया था। विवाह के बाद उसका नाम पदमावती रख दिया गया था लेकिन उसकी विवाहेतर जिंदगी सुखी नहीं रही। पति बेहद सीधा सादा इंसान था। सास को बहू के आध्यात्मिक रुझान से चिढ़ थी। जब ससुराली प्रताड़ना का सिलसिला बढ़ा तो लल्लेश्वरी ने २४ वर्ष की उम्र में घर बार छोड़ दिया। वह शैव संत सिद्ध श्रीकण्ठ की शरण में चली गई। उसकी गहन शैव-साधना की सुगंध एवं चर्चा चारों तरफ फैलने लगी। उसने भी शैव धर्म के वैचारिक पहलू व आध्यात्मिक महत्व को कमोबेश पूरे कश्मीर में इतनी गहराई तक फैलाया कि उसकी व उसकी वैचारिकता और कविताओं की चर्चा लोक संस्कृति व लोकगीतों में भी होने लगी। उसका वैशिष्ट्य यही था कि वह एक ओर हिंदुओं के लिए 'लल्ला योगिनी' थी तो उसी अवधि में मुस्लिमों के लिए वह 'लाल आरिफा' थी।

इसी बीच एक घटना यह भी घटी कि उसके पति ने लाल देव को घर लाने के लिए उसके एक गुरु सिद्धामोल से संपर्क

किया और गुहार लगाई। गुरु ने भी प्रयास करने की सहमति दे दी। गुरु के साथ अपने संवाद में लल्लेश्वरी ने काव्य-माध्यम का ही सहारा लिया।

पति का तर्क था-

‘सूर्य के प्रकाश सरीखी कोई रोशनी नहीं
गंगा सरीखी तीर्थ यात्रा नहीं
भाई सरीखा कोई बंधु बांधव नहीं
पत्नी के होने के समान कोई सुख नहीं’

गुरु का तर्क था-

‘कोई भी रोशनी
आंखों की रोशनी के समकक्ष नहीं
अपने घुटनों के बल चल पाने से
अधिक कोई तीर्थ यात्रा नहीं
अपनी जेब से बेहतर
नहीं होता कोई सगा संबंधी
गर्म कम्बल की मानिंद’

लाल देव का तर्क था-

‘कोई रोशनी नहीं होती
अंतिम सत्य के ज्ञान से बढ़कर
कोई तीर्थाटन, सर्वोच्च सत्ता के
प्रेम से बड़ा नहीं होता
नहीं कोई संबंधी
ईश्वर से बड़ा’

इस महान महिला संत की कविताओं को ‘वाख्’ कहा जाता है। शायद ‘वाख्’, ‘वाक्’ का ही समानार्थक है। कविताएं मूल रूप में कश्मीरी भाषा में हैं और इनके अंग्रेजी अनुवाद अनेक विद्वानों ने किए थे। इन विद्वान अनुवादकों में रिचर्ड टैम्पल, जयलाल कौल, कोलमैन बाक्स, जयश्री ओडीन और रंजीत हौसकोटे आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। उसका एक ‘वाख्’ अत्यंत लोकप्रिय भी हुआ-

जो भी कर्म किया मैंने
वह ईश-आराधन ही था
जो भी शब्द, बुदबुदाया
वही बना मेरी प्रार्थना
मेरी इस काया ने जो भी
स्पन्दन सा महसूस किया
वही शैव-तंत्र साधना बना
इसी रंग का एक और ‘वाख्’ भी चर्चा में रहा-
मैंने जो भी किया

वही किया जो तुमने कराया

उसे सूफी-साधना से भी जोड़ा जाता है। विलक्षण बात यह थी कि उसके कुछ 'वाख्' शैव धर्म एवं हिन्दू धर्म की कुछ अन्य मान्यताओं के करीब थे, मगर उसके समर्पण भाव और तड़प एवं परम सत्ता से मिलन के आधार पर उसे सूफी परिवेश में भी करीब से महसूस किया गया।

उसने अपनी कविताओं में जिन प्रतीकों का प्रयोग किया वह भी गहन अध्ययन मांगते हैं। साधना के मार्ग पर निरंतर बढ़ते हुए वह एक अलौकिक आनंद महसूस करती है। कभी-कभी एक 'गहरे पानी में फैली चांद की परछाई' सरीखी अनुभूति उसे साधना के मध्य महसूस होती है, तो कहीं वह अन्य धर्मों/सम्प्रदायों की रुढ़ियों और उनके द्वारा फैलाए गए भ्रम व भय से मुक्ति का आह्वान भी करती है। वह खोखले आडम्बरों और पशु-बलि सरीखी प्रथाओं को प्रबलता से नकारती है। वह परम्परागत मूर्ति पूजा को भी स्वीकार नहीं करती है। उसके लिए साधना में सराबोर ध्यान स्थिति ही सर्वोच्च है।

उसके गुरु ने एक बार स्वयं स्वीकारा कि शिष्या साधना के पथ पर गुरु से भी आगे निकल चुकी थी, लेकिन लल्लेश्वरी ने गुरु को इष्ट के बाद सर्वोच्च स्थान पर रखा। उसने अपने 108वें 'वाख्' में स्पष्ट लिखा-

जो रखता है गुरु की सीख पर विश्वास
जो दिमाग के अश्वों को
बुद्धि के चाबुक से
रख लेता है नियंत्रण में
वह पा लेता अमरत्व
वह कभी नहीं मरता

लल्लेश्वरी की साधना सतही नहीं थी। कश्मीर में प्रचलित शैव-चिंतन के अनुसार वह भी जगत को माया मानती थी, लेकिन उसकी अवधारणा यह भी थी कि संसार भी उसी परमत्व की ही देन है, उसी का खेल है और जब ज्ञान का प्रकाश मिलता है तो द्वैत का भाव पूरी तरह से समाप्त हो जाता है। अद्वैत के ऐसे क्षणों में लल्लेश्वरी पूर्ण आनंद में मग्न हो जाती है। एक अन्य 'वाख्' (15) में वह इस पूर्ण आनंद को अपनी मौलिक शैली में व्यक्त भी करती है-

अपने व्यापक स्वरूप में छिपे रहे तुम
मैंने दिन भर तुम्हें तलाशा
और जब एहसास हुआ कि

- लल्लेश्वरी स्कूल श्रीनगर



तुम छिपे बैठे थे, मेरे ही भीतर
मैं उन्मत्त होकर नाची/खेलती रही वहीं
खेल/कभी तुम-कभी हम, वाला खेल
कभी-कभी लल्लेश्वरी परम सत्ता से नाराज भी हो जाती,
खीझने लगती, उदास हो जाती, चुभन महसूस करती, लेकिन
अंत में पूर्ण समर्पण की ओर उन्मुख हो जाती-

'जब चांदनी रात, विदा होने लगी

मैंने मन की पागल स्त्री को बुलाया, पुचकारा
उसकी पीड़ा को परमसत्ता के प्रेम से थपथपाया
और फिर उस पारदर्शी झील में
परमसत्ता के साथ ही विलीन हो गई'

लल्लेश्वरी लगभग 72 वर्ष जीवित रही। उसकी वैचारिकता शैव धर्म से प्रभावित थी लेकिन वह निर्गुण एवं निराकार भक्ति में भी आस्था रखती थी। उसके आसपास सूफी संतों का जमावड़ा लगा रहता था। नुन्द ऋषि व ऋषि परम्परा के अन्य सूफी दरवेश भी उसका एहतराम करते थे। वह कश्मीर की सर्वाधिक लोकप्रिय एवं सम्मानित आध्यात्मिक व साहित्यिक शख्सियत थी।

अब उसकी कविताओं, 'वाखों' की संगीतमय प्रस्तुति भी होती है और उसके जीवन व दर्शन पर आधारित एकल नाट्य प्रस्तुतियां भी हो रही हैं। वर्ष 2004 से भारतीय रंगकर्मी मीता वाशिष्ठ, उसके जीवन-चरित पर आधारित मंचन निरंतर दे रही है।

भारतीय भक्ति-आंदोलन की एक अन्य साधिका एवं कवयित्री मीराबाई के साथ उसका तुलनात्मक अध्ययन भी शोध का विषय बना हुआ है। अपने-अपने इष्ट के प्रति दोनों का समर्पण भाव और काव्य धारा में सामन्जस्य तलाशा जा रहा है।

■ ■ ■



डॉ. मुक्ता

स्मित-रेखा 'औ' संधि-पत्र

आँ

सू से भीगे अंचल पर/ मन का सब कुछ रखना होगा/ तुझको अपनी स्मित-रेखा से/ यह संधि-पत्र लिखना होगा- कामायनी की इन चार पंक्तियों में नारी जीवन की दशा-दिशा और उसके जीवन का यथार्थ परिलक्षित है। प्रसाद जी ने नारी की वेदना की अनुभूति की तथा उसे अपने दुःख, पीड़ा व कष्टों को आँसुओं रूपी आंचल में समेटकर मुस्कराते हुए संधि-पत्र लिखने का संदेश दिया। यह संधि-पत्र एक स्फास मझौता है अर्थात् विषम परिस्थितियों का मुस्कराते हुए सामना करना... इस ओर संकेत करता है कि उसे 'सहना है, कहना नहीं।' यह सीख दीथी वर्षों पहले प्रसाद जी ने कामायनी की नायिका श्रद्धा को... उसे मन में उठ रहे ज्वार को आँसुओं के जल से प्रक्षालित करना होगा और अपनी पीड़ा व वेदना को आँचल में समेटकर समझौता करना ही होगा, क्योंकि यही जिंदगी की एक मात्र शर्त है।

आज कामायनी के चार पद, जिन्हें कुमार विश्वास ने वाणी दी है, उस वीडियो को देख-सुनकर अंतर्मन उद्बलित हो उठा। मैं अपनी भावनाओं पर नियंत्रण नहीं रख पायी और मेरी लेखनी नारी जीवन की त्रासदी को शब्दों में उकेरने को विवश हो गई। एक प्रश्न मन में कुमुनाता है कि जब से सृष्टि का निर्माण हुआ है, उसे मौन रहने का संदेश दिया गया है... दर्द को

आँसुओं के भीगे आँचल में छिपाकर, मुस्कराते हुए जीने की प्रेरणा दी गई है... क्या यह उसकी भावनाओं के साथ खिलवाड़ नहीं है? शायद! यह कुठाराघात है उसकी संवेदनाओं पर और समझ नहीं पाता यह मन कि आखिर हर कसूर के लिए उसे ही क्यों प्रताड़ित किया जाता है और अपराधिनी भी वह समझी जाती है... हर उस अपराध के लिए, जो उसने किया ही नहीं। प्रश्न उठता है, जब कोर्ट-कचहरी में हर मुजरिम को अपना पक्ष रखने का अवसर प्रदान किया जाता है, तो नारी समानता के इस अधिकार से वंचित क्यों?

चौंकि मत! यह तो हमारे पूर्वजों की धरोहर है, जिसे आज तक प्रति-पक्ष अथवा पुरुष वर्ग ने संभालकर रखा हुआ है और उसकी अनुपालना आज भी बखूबी की जा रही है। 'क्या कहती हो, ठहरो! नारी/ संकल्प अश्रुजल से अपने/ तुम दान कर चुकी पहले ही/ जीवन के सोने से सपने' द्वारा नारी को आगाह किया गया है कि वह तो अपने स्वर्णिम सपनों को पहले ही दान कर चुकी है अर्थात् होम कर चुकी है। अब उसका अपना कुछ है ही नहीं, क्योंकि दान की गयी वस्तु पर प्रदाता का अधिकार उसी पल समाप्त हो जाता है। स्मरण रहे, उसने तो अपने आँसुओं रूपी जल को अंजलि में भर कर संकल्प लिया था और अपना सर्वस्व उसके हित समर्पित कर दिया था।

नारी! तुम केवल श्रद्धा व विश्वास की प्रतिमा हो और तुम्हें जीवन को समतल रूप प्रदान करने हेतु पीयूष-स्रोत अर्थात्



अमृत-धारा के समान बहना होगा। युद्ध देवों का हो या दानवों का, उसके अंतर्मन में सदैव संघर्ष बना रहता है.... क्योंकि परिस्थितियाँ कभी भी उसके अनुकूल नहीं रहती और पराजित भी सदैव नारी ही होती है। युद्ध का परिणाम भी कभी नारी के पक्ष में नहीं रहता। इसलिए नारी को अपने अंतर्मन में उठते ज्वार पर अंकुश रख आँसुओं-रूपी जल से धधकती ज्वाला को शांत करना होगा तथा उसे अपनी मुस्कान से, सबकी खुशी के लिए जीवन में समझौता करना होगा। यही है नारी जीवन का कटु यथार्थ कि उसे नीलकण्ठ की भाँति हँसते-हँसते विष का आचमन करना ही होगा, क्योंकि यही है उसकी नियति। सतयुग से लेकर आज तक इस परंपरा को बखूबी सहेज-संजोकर रखा गया है, जिसमें तनिक भी बदलाव नहीं आ पाया। नारी कल भी पीड़ित थी, आज भी है और कल भी रहेगी। जन्म लेने के पश्चात् वह पिता व भाई के सुरक्षा-घेरे में रहती है और विवाहोपरांत पति व उसके परिवारजनों के अंकुश में; जहाँ असंख्य नेत्र सी.सी.टी.वी. कैमरे की भाँति उसके इर्द-गिर्द घूमते रहते हैं और उसकी हर गतिविधि उनमें जैद होती रहती है।

दुर्भाग्यवश न तो पिता का घर उसका अपना होता है, न ही पति का घर... वह तो सदैव पराई समझी जाती है। इतना ही नहीं, कभी वह कम देहज लाने के लिए प्रताड़ित की जाती है, तो कभी वंश चलाने के लिए पुत्र न दे पाने के कारण, उस पर बाँझ होने का लाँछन लगाकर घर से बाहर का रास्ता दिखा दिया जाता है। जीवन के अंतिम पड़ाव पर पहुँचने पर केवल चेहरा बदल जाता है, नियति नहीं। हाँ! पिता और पति के न रहने पर, उसका स्थान पुत्र संभाल लेता है और उसका भाग्य-विधाता बन बैठता

है। उस स्थिति में उसे केवल पुत्र का नहीं, पुत्रवधु का भी मुख भी ताकना पड़ता है, क्योंकि अब उसकी ज़िन्दगी की डोर दो-दो मालिकों के हाथ में आ जाती है।

आश्चर्य होता है, यह देखकर कि मृत्युपरांत उसे पति के घर का दो गज़ कफन भी नसीब नहीं होता; वह भी उसके मायके से आता है और भोज का प्रबंध भी उनके द्वारा ही किया जाता है। अजीब दास्तान है उसकी ज़िन्दगी की... जिस घर से उसकी डोली उठती है, वहाँ लौटने का हज़ उससे उसी पल छिन जाता है और ससुराल की चौखट लांघने का हज़ उसे मिलता ही कहाँ है, क्योंकि वहाँ वह आजीवन पराई समझी जाती है। भ्रूण-हत्या के कारण आजकल लज़कियों को दूर-दराज़ से खरीदकर लाया जाता है, जहाँ वे 'मोलकी' अर्थात् पैसे से खरीदी गयी दुल्हन के रूप में पहचान पाती हैं। वैसे भी जिस घर से अर्थी उठती है, वह घर उसका होता ही कहाँ है? इसी उधेड़बुन व असमंजस में वह पूरी उम्र गुज़ार देती हैं।

प्रश्न उठता है, आखिर संविधान द्वारा उसे समानता का दर्जा क्यों प्रदत्त नहीं? अधिकार तो पुरुष के भाग्य में लिखे गये हैं और त्रीक पेम त्रिक तर्व्योंक ी ज़ेहरिस्तथ माद ीज ीती है... आखिर क्यों? जब सृष्टि-नियंता ने सबको समान बनाया है, तो उससे दोयम दर्जे का व्यवहार क्यों? यह प्रश्न बार-बार अंतर्मन को कचोटता है.... हाँ! यदि अधिकार माँगने से न मिले, तो उन्हें छीन लेने में कोई बुराई नहीं। श्रीमद्भगवद्गीता में भी अन्याय करने वाले से, अन्याय सहन करने वाले को अधिक दोषी ठहराया गया है।

एक लंबे अंतराल के पश्चात् शायद! नारी की सुप्त चेतना जाग्रत हुई होगी और उसने समानाधिकार की माँग करने का साहस जुटाया होगा। सो! कानून द्वारा उसे अधिकार प्राप्त तो हुए, परंतु वे सब कागज़ की फाइलों तले दबकर रह गये हैं। नारी शिक्षित हो या अशिक्षित, उसकी धुरी सदैव घर-गृहस्थी के चारों ओर घूमती रहती है। दोनों की नियति एक समान होती है और उनकी तज़दीर में तनिक भी अंतर नहीं होता। वह सदैव प्रश्नों के घेरे में रहती है। पुरुष का व्यवहार औरत के प्रति सदैव कठोर ही रहा है, भले ही वह नौकरी कर के उसके समान व उससे अधिक वेतन ही क्यों न प्राप्त कर रही हो? परंतु परिवार के प्रति समस्त दायित्व-वहन की अपेक्षा उससे ही की जाती है। यदि वह किसी कारण-वश उनकी अपेक्षाओं पर खरी नहीं उतर पाती, तो उस पर आक्षेप लगाकर प्रताड़ित किया जाता है और असंख्य जुल्म ढाए जाते हैं। सो! उसे आजीवन पति व परिजनों के आदेशों की अनु-पालना सहर्ष करनी पड़ती है।

हाँ! वर्षों तक पति के अंकुश में रहने पर भी उसके खुश न

रहने पर, उसके हृदय का आक्रोश फूट निकलता है और वह प्रतिकार-प्रतिशोध की राह पर चल पड़ती है। आजकल लड़कों की भांति जीन्स कल्चर को अपनाकर क्लबों में नाचना गाना, हैलो-हाय करना, सिगरेट के ज़श लगाना, मदिरापान करना व ससुरालजनों को अकारण जेल के पीछे पहुँचाना उसके शौक बनकर रह गए हैं। विवाह के बंधनों को नकार, वह 'लिव-इन' की राह पर चल पड़ी है, जिस के भयंकर परिणाम उसे आजीवन झेलने पड़ते हैं।

'तुमको अपनी स्मित-रेखा से/यह संधि पत्र लिखना होगा।' यह पंक्तियाँ कल भी समसामयिक व सामाजिक थीं, आज भी हैं, और कल भी रहेंगी। परंतु नारी को पूर्ण समर्पण करना होगा और प्रति-पक्ष की बातों को हँसते-हँसते स्वीकार करना होगा.... यही जिंदगी की शर्त है। वैसे भी अक्सर महिलाएँ बच्चों की खुशी व परिवार की मान-मर्यादा के लिए अपने सुखों को तिलांजलि दे देती हैं और अपनी अस्मिता व प्रतिष्ठा को दाँव पर लगाकर शतरंज का मोहरा बन जाती हैं। कई बार अपने परिवार की सलामती के लिए अपनी अस्मिता का सौदा तक करने को विवश हो जाती हैं, ताकि उनके हँसते-खेलते परिवार पर कोई आँच न आ पाए। इतना ही नहीं, वे बंधुआ मजदूर तक बनना स्वीकार कर लेती हैं, परंतु उफ़ तक नहीं करतीं। आजकल फ़िरौती, अपहरण व दुष्कर्म के किस्से आम हो गए हैं। परंतु यह तो निश्चित है कि दोष चाहे किसी का भी हो, अपराधीनी वह नारी ही कहलाती है।

'ज्ञान दूर, कुछ क्रिया भिन्न है/ इच्छा क्यों पूरी हो मन की/ एक-दूसरे से मिल न सके/ यह विडंबना है जीवन की' कामायनी की यह अंतिम पंक्तियाँ मन की इच्छा-पूर्ति के लिए ज्ञान व कर्म के समन्वय को दर्शाती हैं। इनका विपरीत दिशा की ओर अग्रसर होना जीवन की विडम्बना है... दुःख व अशांति का कारण है। सो! समन्वयव सामंजस्यता से समरसता आती है और वह अलौकिक आनंद-प्रदाता है। इसके लिए निजी स्वार्थों के त्याग की दरज़ार है। इसके द्वारा ही हम परहितार्थ स्वयं को हँसते-हँसते समझौता करने की स्थिति में पाते हैं और परिणाम-स्वरूप पारिवारिक व सामाजिक सौहार्द बना रहता है।

सम्पर्क : 239, सेक्टर -45 ,गुरुग्राम
मोबाइल : 8588801878



लघुकथा

तीन डायरी के पन्ने

अनघा जोगलेकर

मिसेस सिंधानिया की डायरी का पन्ना

14 अप्रैल, 2020

डियर डायरी,

मैं एक मिलियनेयर की पत्नी, एक बड़ी कम्पनी की एम.डी. और एक समय की ब्यूटी क्वीन होते हुए भी... आयु एम अ विक्टिम ऑफ़ डोमेस्टिक वॉयलेंस लेकिन किसी से कह भी नहीं सकती। स्टेटस और रेपुटेशन बीच में आती है। बट आई कांट हैंडल इट एनिमोर। अब मुझसे और नहीं सहा जाता। हो सकता है कि मैं कुछ कर बैटूँ या ये भी हो सकता है कि मुझे जान से मार...

श्रीमती वर्मा की डायरी का पन्ना

28 जून 2020

प्रिय डायरी,

मैं एक मध्यमवर्गीय परिवार की बेटी और बहू, नौकरी पेशा पति की पत्नी, 2 बच्चों की माँ होते हुए भी, मैं बार-बार... घरेलू हिंसा की शिकार होती हूँ। अब सहना मुश्किल होता जा रहा है लेकिन बच्चों को देखकर चुप रह जाती हूँ। मैंने कुछ कर लिया तो मेरे बच्चों का क्या होगा...

सखु बाई की डायरी का पन्ना

17 नवम्बर 2020

डायरी रे,

तेरे को तो मालूम न कि अपुन को बचपन से पढ़ाई का शौक, चुपके से लिखना-पढ़ना सीखी लेकिन एक बेवड़े से ब्याह दी गयी। मास्साब का भला हो जो उनने मेरे कू तुझे लिखने की आदत डाली। तेरे साथ मैं अपना सुख-दुख तो बांट लेती हूँ। अब देख न! मेरा मरद मेरे कू रोज मारता है। लेकिन अब अपुन की सहन करने की ताकत खल्लास होती जाती है। रोज सोचती कि आने दे आज उसको घर.. हाथ लगायेगा तो हाथ तोड़ डालेगी...

ऐसी डायरियाँ रोज लिखी जा रही हैं... अनवरत... क्या बदलाव की जरूरत नहीं ?

सम्पर्क : 32/4, प्रिमरोज, वाटिका सिटी, सेक्टर 49, गुरुग्राम



डॉ. संतोष गोयल



नारी : आज की स्थिति का सच

या

ज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी को अभिशाप दिया था।

“सवाल मत पूछो मैत्रयी। सवाल पूछोगी तो सिर धड़ से अलग हो जाएगा।”

यह अभिशाप केवल मैत्रयी के लिए नहीं था समस्त स्त्री समूह के लिए था

शायद। कोई भी प्रश्न उठाया तो सिर धड़ से अलग करने का अभिशाप मिला। असल में स्त्रियों के लिए मस्तिष्क के प्रयोग पर ‘नो एंट्री’ का बोर्ड लगा दिया गया है। यद्यपि आधुनिक नारी ने अपनी भूमिका को लेकर अनेक सवालिया निशान लगाए हैं पर क्या सचमुच उनकी कोई सार्थकता है।

आज तक सच इतना भर है की स्त्री स्वतंत्र व्यक्तित्व के निर्माण में जुटी तो है केवल एक हद तक अर्थात् उसकी सहमति ली जानी चाहिए किंतु विरोध करने की इजाजत नहीं मिलेगी। उससे अपेक्षा की जाती है की पहले से निश्चित किए गए फैसले पर मात्र अपना अनुमोदन कर दे।

समस्त स्वतंत्रता के पश्चात उसे परंपरागत भूमिका को छोड़ देने की सुविधा नहीं है। यूं दिखाया व बताया यह जाता है कि आज की नारी परंपरागत अतीत से कट चुकी है तथा नया स्वरूप व परिभाषा पा चुकी है।।

यहां यह भी प्रश्न है कि समाज में क्या बदलाव आया है तो दूसरा यह भी कि आधुनिक शिक्षित नारी, नौकरी पेशा स्त्री स्वयं को परंपरागत भूमिका से कितना मुक्त कर पा रही है अर्थात् क्या वह सोच विचार के स्तर पर स्वतंत्र हो पा रही हैं? शायद इसका उत्तर कुछ लोग ‘हां’ भी देंगे पर अधिकतर नहीं

होगा। आज भी स्त्री के प्रति होने वाले अत्याचार, व्यभिचार, अनाचार की समस्त खबरें सिद्ध करती हैं स्थिति की भयंकरता और भयानकता दर्शाती है, स्त्री की स्थिति के प्रति निराशा उत्पन्न करती हैं।

सभ्यता के उच्च स्तर पर पहुंचा हमारा समाज आज भी महाभारत और रामायण काल की भांति स्त्री की अस्मिता को लूटते मिटते देख रहा है। घटना चाहे मुंबई की लोकल ट्रेन में मानसिक रूप से विक्षिप्त लड़की के बलात्कार की हो या मुजफ्फरनगर गांव में इमराना के साथ होते अनाचार की बात हो या फिरोज शेख द्वारा 3 वर्षीय बच्ची के साथ बलात्कार की घटना हो या पुणे के कॉलेज विद्यार्थियों के कमरे में वेब कैमरे द्वारा नग्न तस्वीरें खींचने तथा एम.एम.एस. द्वारा जन-जन में चित्र वितरित किए जाने की खबरें मात्र समाचार नहीं है, अत्याचार अनाचार की जिंदा मिसाल है। पिछले दिनों एक और घटना पढ़ने में आई स्त्री का उसके बलात्कारी से ही विवाह कर उसकी इज्जत वापस दिलाई गई यह फैसला कोर्ट ने दिया। इस फैसले ने स्त्री की अस्मिता के आगे अनेक प्रश्न खड़े कर दिए? क्या स्त्री की इज्जत ऐसी वस्तु है कि उसे लूट लेने वाला बलात्कार करने वाला व्यक्ति ही उसे प्रदान कर सकता है। यह अधिकार उसके पास है क्या?

स्त्रीक याहूँए कम ांसक ाल ोथड़ाभ र,ि सरा वहीन, सोचने समझने की शक्ति से वंचित। अखबार के पन्ने पलटिए तीसरा पन्ना दहेज के लिए जला दी गई या आत्महत्या को विवश की गई, बलात्कार की शिकार पति द्वारा सताई जाती मारपीट

सहित जाने किस-किस प्रकार की दिल दहलाने वाली खबरों से भरा रहता है। आज तो यह खबरें प्रथम पन्ने की हो गई हैं वह भी बड़े-बड़े हेडलाइंस में यहां तक कि अस्पतालों के कर्मों तथा पुलिसवॉलेज हीं प रभ ीत ेम हिलासुरक्षितम हसूसन हीं करती। टेलीविजन खोलिए क्राइम पेट्रोल रिहाई जैसे कार्यक्रम अत्याचार के जाने कितने सच बयान करते हैं। किसी भी आयु, वर्ग, जाति की महिला छोटी बच्ची से दुष्कर्म होने तक बुजुर्ग होने तक स्त्री असुरक्षित है। सुरक्षाकर्मियों के बीच भी असुरक्षित है बेची व खरीदी जा रही है। तेमनी जैसी नारियां इधर-उधर हर स्थल पर हर कोने पर मिल जाएगी जिन पर हुआ बलात्कार मात्र खबर नहीं है दिल दहला देने वाला सच है जो हर व्यक्ति में गुस्सा और आक्रोश उत्पन्न करता है। 27 जून, 2007 दो बच्चियों की मां की हत्या इसलिए कर दी गई कि उसे तीसरी बार भी लड़की हुई थी।

श्याम बिहारी द्वारा लड़की पैदा करने की सजा अपनी पत्नी की नाक काट कर दी। क्या इन्हें मात्र खबरें मांगा चाहिए।

वास्तव में यह सभी खबरें महिलाओं के अपमान की सच्ची दास्ताने हैं जिनके भीतर स्त्री की टूटी फूटी, पैबंद लगी जिंदगी का यथार्थ छिपा है। स्त्री की सुरक्षा का प्रश्न मुंह बाए खड़ा रहता है। आखिर उसके लिए कौन सा कोना सुरक्षित होगा। ना घर, ना पति, ना पिता, ना पिता समान ससुर यहां तक की महिला संबंध भी मां, भाभी, सास बहन आदि वे तो स्वयं ही असुरक्षित जिंदगी जीती आई हैं दूसरे की रक्षा क्या करेगी? आखिर हमारे पूर्वजों, समाज के ठेकेदारों ने कहां क्या गलती की है आज तक स्त्री द्रोपदी बनाई जाती है जिस का चीर हरण होता है और समस्त समाज यहां तक कि बड़े बुजुर्ग भी चुप बैठे रहते हैं। कौन है उत्तरदाई है क्या हमारी प्राचीन नियमावली या आज का कानून, कानून के निर्माता व रक्षक अथवा समाज की मानसिकता।

“टूटे खंडहरी दरवाजे के पीछे

सिर कटी लाश का वह हाथ

कितना भी दस्तक दे/कौन सुनेगा?”

सचमुच सिर कटी लाश की महिला रो-रोकर कुछ भी करे कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यूं सिर ही ना है तो प्रश्न कौन उठाएगा? फिर कोई क्यों ध्यान देगा उसकी दस्तक पर?

नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो के आंकड़ों के अनुसार प्रतिदिन डेढ़ सौ से 200 स्त्रियां घरेलू हिंसा का शिकार होती हैं 80 दहेज के कारण जला दी या मार दी जाती हैं। अनेक आत्महत्या करने को विवश होती हैं 50 प्रतिशत से अधिक स्त्रियां थप्पड़ खोकर मारपीट हर प्रकार की शारीरिक यातना का शिकार होती हैं जिनमें वृद्धा मां और दादी जैसे संबंध भी होते

हैं। विधवाओं की स्थिति तो और भी खराब है उनकी स्थिति को तो वर्णित करने के लिए शब्द ही नहीं मिलते हैं। आज स्त्री को सुरक्षा देने वाले अनेक कानून बना दिए गए हैं अनेक स्वयंसेवी संस्थाएं स्त्री के सशक्तिकरण से जुड़ी हैं महिलाएं स्वयं भी अपनी लड़ाई लड़ने को सन्नध तैयार हैं हाशिए पर नहीं रहना चाहती फिर भी फिक्की द्वारा किए गए सर्वे के अनुसार आज महानगरों में स्त्री के प्रति दुर्व्यवहार की संख्या बढ़ रही है, ऐसी स्थिति में डोमेस्टिक वायलेंस अगेंस्ट वूमेन प्रिवेंशन एंड प्रोटेक्शन बिल का पास होना एक सुखद कदम माना जाएगा। एक और इस बिल का पास होना स्त्री के प्रति होने वाली हिंसा अत्याचार की वृद्धि की ओर संकेत करता है तो दूसरी ओर यह है वह कदम है जो भविष्य के प्रति आशान्वित करता है।

इस पुरुष प्रधान समाज में गाड़ी की चालक सीट पर बैठ जाने पर महिलाओं को गाड़ी भी वही चलानी पड़ती है जो उसे दी गई है चालक सीट पर बैठ कर वह कितना भी सोचे के वह गाड़ी को चलाने वाली है उसके दिमाग से गाड़ी चल रही है पर यह कितना सच है? सच में तो यही है के गाड़ी के कंप्यूटर को जो कमांड दिए गए हैं कमांड दिए गए वह है वह उसी के अनुसार चलती है। संकेत देने वाला तो कोई और है जो कहता है तुम्हें कुछ सोचने की जरूरत नहीं तुम वही करती जाओ जो हम कहते हैं।

मानव के विकास की यात्रा कितनी भी लंबी व खुशनुमा हो किंतु नारी की जीवन यात्रा तो रहट पर चलते रहने की है एक हीखूटेसेब धेव हअ पनेच रोंअ रेघूमतीर हतीहैअ रैर समझती है कि वह आगे बढ़ रही है और चल रही है।

एक बात और नारी की वास्तविक स्थिति वह है जो वह महसूस होती है यदि वह घर की चारदीवारी में पितृसत्तात्मक समाज द्वारा बनाई गई सीमाओं तथा प्राप्त सुविधाओं के बीच बंद रह कर प्रसन्न है तो उसके जीवन पर प्रश्न चिन्ह कौन लगा सकता है।

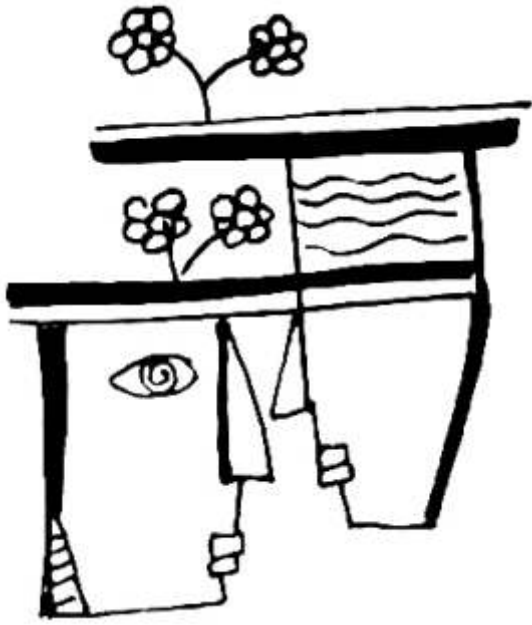
यदि वह इस सब से संतुष्ट है बार-बार प्रश्नों के जाल में फंसती बंधती टूटती बिखरती रहती है अपने होने पर प्रश्न चिन्ह लगाती है बेड़ियां तोड़ना चाहती है देवी भी नहीं बनना चाहती दासी भी नहीं तभी समस्त संघर्ष विमर्श का कोई अर्थ है।

मंजिल को पाना कितना भी हो कठिन

जान लेने से शुरू होता है पाने का सफर

स्त्री का अपने अस्तित्व को पाने का सफर शुरू हो चुका है कौन बताएगा? इसका उत्तर शायद हां है या फिर नहीं।

सम्पर्क : सी-1/678 ग्राउंड फ्लोर, पालम विहार,
गुरुग्राम-122017; मोबाइल : 9818031697



डॉ. अंजु दुआ जैमिनी



आधी आबादी का सफर जारी है

बु

लंद आवाज में स्त्री सशक्तीकरण का नारा लगाती आधी आबादी का सफर आज भी जारी है। लगभग एक दशक से स्त्री की सोच में बड़ा बदलाव आया है और बदलाव के साथ जागरूकता भी बढ़ी है।

नारी स्वयं में सशक्त है यह वह जान चुकी है। वह आज भी अपने अधिकारों के प्रति संघर्षरत है क्योंकि अभी भी उसे वह नहीं मिला जिसकी उसे समाज से अपेक्षा है। वह आज भी कई मोर्चों पर स्वयं को हारा हुआ महसूस करती है, जहाँ उसकी लड़ाई बाहर वालों की बजाय अपनों से होती है। वह आज भी अपने अस्तित्व की खोज में प्रयास कर रही है और इसी क्रम में कहीं न कहीं आलोचना की शिकार भी हो रही है।

स्त्री-स्वातंत्र्य के प्रति दृष्टिकोण को आज तीन परिप्रेक्ष्य में देखा जा रहा है-

1. अत्यल्प खुला दृष्टिकोण
2. संतुलित दृष्टिकोण
3. अत्यधिक खुला दृष्टिकोण

1. अत्यल्प खुला दृष्टिकोण-

इस दृष्टिकोण वाली महिलाएँ गाँव, कस्बे, नगर, महानगर सभी जगह हैं। ये वे महिलाएँ हैं जो अधिक शिक्षित नहीं हैं, स्वतंत्रता का अर्थ ज्यादा नहीं जानती, अपने कर्तव्य चुपचाप निभाती हैं और अपने अधिकारों के प्रति जागरूक नहीं हैं। इस

तरह की महिलाएँ घर-गृहस्थी के कामों में उलझी रहती हैं और पति-बच्चों के बीच हर समय फँसी रहती हैं। कामों में पिसे रहना उनकी नियति है और चुपचाप अपने काम करती हुई जीवन जीती हैं। शोषण का शिकार होने पर इन्हें चुप करा दिया जाता है और ये मुँह सिल लेती हैं। सेवा करना अपना धर्म मानती हैं क्योंकि इनका लालन-पालन इसी ढंग से किया गया है और समाज इन्हें अपना गुलाम समझता है। चाह कर भी ये अपने अधिकारों के लिए मुँह नहीं खोल पाती। इन्हें सोच समझ कर स्त्री बनाया गया है अर्थात् इन्हें कठपुतली की तरह जीने पर बाध्य किया जाता है और इन्हें अपने स्त्रीत्व के हनन का पता ही नहीं चलता। इन्हें इंसान नहीं मशीन समझा जाता है जिसका काम बच्चे जनना और उनकी देखभाल करना है। जिनके लिए पति देवता है भले उसका व्यवहार दानव सम हो। इस तरह की स्त्री आसानी से जाल में फँसाई जाती है, वह प्रेमजाल हो या मोहजाल। उसके जीने का उद्देश्य क्या है उसे नहीं पता। वह अपने नाम से नहीं जानी जाती अपितु पति या बच्चों के नाम से जानी जाती है। वह किसी की बहू, बेटी, पत्नी, माता बन कर रह जाती है। बस यही है उसकी पहचान। 'स्व अस्तित्व' किस चिज़िया का नाम है, नहीं जानती।

2. संतुलित दृष्टिकोण-

इस तरह का दृष्टिकोण रखने वाली महिलाओं की संख्या काफी है। साईबर युग की नारी जान चुकी है कि उसका कैरियर

महत्वपूर्ण है। उसका नाम अपने-आप में सशक्त है। वह पज़ी-लिखी है। अपने अधिकारों के प्रति जागरूक है, साथ ही अपने कर्तव्यों को भी बखूबी निभाती है। वह घर और बाहर दोनों मोर्चों पर डटी है और अपनी संतुलित सोच के दम पर अपना नाम भी ऊँचा करती है और घरवालों का सम्मान भी बज़ाती है। वह तनाव को दूर करने के लिए गीत-संगीत में भी रूचि रखती है और कार्यस्थल पर भी अपने कर्तव्य का निर्वहन करती है। वह मेहमानों का स्वागत भी करती है और मीटिंग्स में अपने प्रस्ताव का प्रस्तुतिकरण भी करती है। वह चुस्त और सशक्त महिला है जो सभी मोर्चों पर मुस्तैद है। वह बाधाओं को पार करके अपनी मंजिल की ओर सधे कदमों के साथ आगे बढ़ती है। वह तन-मन-धन से सशक्त है। वह आर्थिक, सामाजिक तौर पर मजबूत है। रिश्ते निभाती है, बखूबी निभाती है। वह अपने बच्चों के लिए रोल मॉडल है। समाज में उसकी पहचान है। सम्मान देती है और सम्मान प्राप्त करना भी जानती है। आजकल इस तरह की महिलाओं की संख्या बढ़ रही है और यह हर्ष का विषय है। आने वाले समय में इस तरह की महिलाओं की संख्या और बढ़ने वाली है। आधी आबादी साक्षर होगी, स्वाभिमानी होगी, स्वावलंबी होगी, साहसी होगी तभी स्वयं को सशक्त महसूस करेगी।

3. अत्यधिक खुला दृष्टिकोण-

इस तरह का दृष्टिकोण रखने वाली महिलाओं का बज़ा प्रतिशत चिंता का विषय है। इस श्रेणी में आने वाली महिलाएँ वे महिलाएँ हैं जिन्हें कानून की जानकारी है, जो अपने अधिकार जानती हैं, जो छीनना जानती हैं और डराना भी जानती हैं। कानून का फायदा उठाना जानती हैं। सबसे ज्यादा तनाव में आजकल लड़कों की माँएँ इन्हीं के कारण हैं क्योंकि आजकल घरेलू हिंसा कानून की आज़में इस युग की तथाकथित सशक्त महिलाओं ने झूठे आरोप लगाकर शरीफ महिलाओं को जेल की हवा खिलाने का खेल चलाया हुआ है। आजकल सासों की साँस घुट कर रह गई है। सास का नाम ही बदनाम है और बहू को बेचारी का तमगा मिला है जिसका फायदा अत्यधिक खुले दृष्टिकोण वाली महिलाएं उठा रही हैं। ये महिलाएँ लिव-इन रिलेशनशिप को बुरा नहीं मानती, ये विवाह को बंदिश मानती हैं। ये समलैंगिक रिश्तों में बंधना चाहती हैं क्योंकि ये मर्दों से घृणा करती हैं। इस तरह की महिलाएँ स्वतंत्रता को स्वच्छंदता में बदल चुकी हैं। ये पुरुषों की बराबरी करते हुए उनसे आगे निकल गई हैं लेकिन

कैरियर में नहीं अपितु बुरी आदतों में। ये पुरुष होना चाहती हैं। ये अपना स्त्रीत्व खत्म करना चाहती हैं। इस तरह की स्त्री उन्मुक्त व्यवहार करके स्वयं का अस्तित्व कायम रखना चाहती है पर नहीं जानती कि यह समाज जब पुरुष की स्वच्छंदता स्वीकार नहीं करता तो स्त्री की स्वच्छंदता कैसे स्वीकार कर लेगा।

संतुलित दृष्टिकोण की आवश्यकता-

अब बात करते हैं संतुलन की। आज की नारी को अपनी पहचान बनानी है तो उसे स्वतंत्र विचार रखने होंगे स्वच्छंद नहीं। उसे अपनी सोच को कलुषित होने से बचना है। विवाह संस्था में उसे विश्वास रखना होगा और उसे बंदिश मानने की बजाय पवित्र बंधन बनाने का यत्न करना होगा। उसे दूसरी नारी का सदकार्यों में साथ देना होगा, बुरे कर्मों में नहीं। उसे अपनी पहचान बनानी है पर दूसरे की पहचान मिटा कर नहीं। उसे अतिमहत्वाकांक्षा से बचना है। उसे परिवार को भी महत्व देना है और अपने कार्यों को भी। उसे आर्थिक रूप से स्वावलंबी बनना है साथ ही सज़ी-गली मान्यताओं और अंधविश्वासों को अपने जीवन से दूर करना है। उसे अपनी दिशा तय करनी है जो सही हो। उसे राह से भटकना नहीं चाहिए। उसे सम्मान चाहिए तो सम्मान देना होगा। उसे अधिकार चाहिए तो कर्तव्य निभाने होंगे। उसे शिक्षा का महत्व समझना होगा। उसे अपने स्त्रीत्व को भी बचाए रखना है। उसे अपने शोषण के खिलाफ अपनी आवाज़ बुलंद करनी होगी साथ ही दंभ से भी बचना होगा।

इन सबके अतिरिक्त एक बात बहुत आवश्यक है। स्त्री को लालच से बचना है। मंजिल पाने के लिए उसे अपने रूप-यौवन को सीज़ी नहीं बनाना है। अक्सर स्त्री प्रशंसा पाकर फूल जाती है या महंगे तोहफे पाकर दिग्भ्रमित हो जाती है। झूठे प्रेमजाल में फंस जाती है। कार-कोठी, आभूषण, मोबाइल जैसी वस्तुओं को पाने के लिए अपना ईमान बेच देती है जो उसे अपनी नजरों में गिरा देता है। उसे सम्मान पाना है तो सामान का लालच छोड़ना होगा। अब समय आ गया है कि वह छल-कपट की आहट पहचाने और तुरंत उससे दूर हो जाए। उसे समझना होगा कि वह अपनी मर्जी की मालिक है लेकिन स्वाभिमान को गिरवी रख कर सम्पर्क-- नहीं। नारी का सफर अभी जारी है, मंजिल अभी दूर है लेकिन राहें उसके स्वागत में सदा तैयार हैं।

सम्पर्क : 839. सेक्टर 21-सी फरीदाबाद-121001

मोबाइल : 9810236253



मैत्रेयी पुष्पा

क्रांतिकारी साहित्य-साधिका

प्रस्तुति- माधुरी मिश्रा

मै

त्रेयी पुष्पा एक लब्ध प्रतिष्ठित साहित्यकार, जिनके नाम के बिना हिन्दी साहित्य का इतिहास अपूर्ण माना जाएगा। 12 उपन्यास और 7 कहानी संग्रह इनकी साहित्य-निधि है। मेरा

सौभाग्य है कि उन्होंने अपने अमूल्य समय में से कुछ समय निकालकर मेरे आँचल में डाला। लीजिये आप भी उनसे हुए साक्षात्कार का-

- मैत्रेयी जी आप कब से लिख रही हैं ?
- 1990 से लिख रही हूँ। जब तक लोग मैच्योर होते हैं। तब तक मैंने सोचा और मैच्योर होने पर लिखना शुरू किया।
- मैत्रेयी जी वो कौन-सा क्षण था, पल था या प्रेरणा जिसने लिखने पर मजबूर किया ?
- मेरी बिटिया ने मुझे कहा कि आप लिखें, बोली कि, आप बचपन में हमें लिख कर देती थीं... आप अपने नाम से क्यों नहीं लिखतीं। मेरी पहचान सिर्फ मेरे पति के नाम से थी। मैं ने पहली कहानी साप्ताहिक हिन्दुस्तान के लिए लिखी 9 अप्रैल को छपी....आज भी उसे छू कर देखती हूँ। ग्रामीण पृष्ठ भूमि पर मेरी रचना थी जो अभी तक किसी महिला की कलम से नहीं निकली थी.... मैं छपती रही और फिर मुड़कर पीछे नहीं देखा। पहली पुस्तक के लिए पब्लिशर मिलने में मुझे देर नहीं लगी। जबकि मेरी

भाषा सीधी-सादी है।

- बुंदेलखण्डी भाषा पर इतना ध्यान या फोकस क्यों है ?
- कोई पक्षपात नहीं लेखक जहाँ से आता है, उसकी वैसी ही वाणी, वैसा ही खान पान, अंदर से इंसान नहीं बदलता....मेरी भाषा बृज भाषा और गाँव को सरल बोली है। जिस भाषा पर अधिकार था....जड़ों से कटकर कोई क्या लिख पाएगा। भाषा में मुहावरे, लोकोक्ति प्रभाव पैदा करते हैं....काफी गहरी बात कह जाते हैं और ये सब ग्रामीण बोली से ही निकलते हैं।
- आपकी वो कौन सी रचना थी, जिसने आपको पहचान दिलाई.
- इदनामम ने पहचान दिलाई....पर चाक पर काफी बहस छिज़ी जो आज भी जारी है 12 वर्ष हो गए... सेक्स पर पुरुष लिखे तो....पर स्त्री लिखे तो हाय तौबा। स्त्री में अपना कुछ भी नहीं। पुरुष के नचाने पर नाचे.... अगर कुछ कहे तो उसके चरित्र पर लांछन। स्त्री कुछ नहीं सोचती है....कोई मामला हो स्त्री को अविश्वसनीय समझा जाता है। ठहराया जाता है। लोगों की गलत बातों से सहमत नहीं तो। साहित्यकारों को....पब्लिशर्स को.... चार पुस्तकें तो कोर्स में लगी हुई हैं। पढ़ाने वालों को कोई परेशानी नहीं आती। अल्मा कबूतरी, विवाद में आई सोच

है। औरत को कबूतरी कहते हैं। जबकि ये ट्राईबल.... 'चाक' एक आम औरत से कहानी है। कैसे वो मौसम के साथ बदलती है।

■ साहित्य और साहित्यकारों में गुटवाद पर आपका मत ?

- असल में ये होता तो नहीं है। पर लोग बना लेते हैं। मुझे राजेन्द्र यादव के गुट से जोड़ा जाता है, पर उस पर लेखन का कोई प्रभाव नहीं है। उनके लेखन, और मेरे लेखन में कोई समानता नहीं है। उनसे मेरी मित्रता है। पहले तो नहीं थी, पर आपने मेरी कहानी पढ़ी पसंद आई और उन्होंने लिखा.... रांगेय राघव और रेण के बाद मैत्रेयी का नाम धूमकेतु सा आया और कथा साहित्य को ड्राइंग रूम से निकालकर खेत खलिहानों तक पहुंचाया और साहित्य को दोहराव से बचा लिया। पर ये सब बातें लोगों को पची नहीं और गुटवाद से जोड़ा दिया कि, ये कल की आई। इसका इतना नाम कैसे। सिर्फ उन्होंने ही नहीं। मैनेजर पांडे, ब्रह्मानंद श्रीवास्तव, राघवेंद्र ठाकुर, ओमप्रकाश वाल्मिकी, कमल भारती इन सबने माना....पर जो इस बात का विरोध करते हैं। खेमे के हुए हैं। पर उन बातों का साहित्य से कुछ लेना दिना नहीं है।

■ अल्मा कबूतरी की भाषा पर भी विवाद रहा ?

- नहीं... अल्मा कबूतरी की भाषा पर तो नहीं पर उसके कुछ दृश्यों पर विवाद जरूर उठा था। कबूतरी एक समाज, अपराधी समाज मान अंग्रेजों ने....पर उनका व्यवहार वही है, उनके पास न जल, न जंगल, न जमीन....नौकरी मिलती नहीं लूट करते हैं....स्त्रियाँ शराब बनाती हैं.... 'सभ्य' लोग कच्ची शराब पीने आते हैं। कबूतरीसुंदरहोतीहै.... 'सभ्य'लोगशराबभी बनाने नहीं देते जाने उनसे क्या आशा करते हैं.... आपके सामाजिक दायरे में कब तक रहेगी। मेढ़ पर से गुजरे तो किसान....चौकी से गुजरे तो पुलिस हवस का शिकार बनाते हैं....और जब सच्चाई लिख दी जाती है तो ए.सी. रूम में बैठकर विमर्श करते हैं...उनसे नैतिकता की आशा करते हैं। फतवा तक जारी किया। साहित्य समाज ने कि, येतोदेहिविमर्शकरतीहै। बनशरीरकेअंतरतय। आदमी आपने देखा है। अमूर्त ब्रह्मा की बात करते हैं।

■ कहा जाता है, नारी ही नारी की दुश्मन है.... आपका एक्सपर्ट कमेंट।

- गलत बिल्कुल गलत। ये भी पुरुष की साजिश है.... दुश्मन दिखाई देती है.... होती नहीं। सास-ननद दिखाई

देती है माँ....घर का हक भी ... असुरक्षा की भावना घर कर गई 'झूला नट' में इसी 'विषय' पर फोकस किया है। दुःख आने पर नारी हमेशा साथ देती है।

■ नारी की स्थिति कैसी है देश या विदेश में ?

- विदेशों में दूसरी तरह की समस्या है, वैसा यहाँ भारतीय तरह की समस्या है। अपेक्षाकृत वो ज्यादा स्वतंत्र हैं। जो यहाँ आज है वहाँ 250 वर्ष पहले था। जो आंदोलन यहाँ आज हो रहा है वहाँ हो चुका है।

■ भविष्य में आपकी क्या योजनाएँ हैं ?

- योजना कभी नहीं बनाई। जो कुछ सामने आया उसे सहर्ष स्वीकार किया.... सिपाही के आगे क्या बोलूंगी। जब बोलना पड़ा। महिला पुलिस की जरूरत क्या है ? निम्न वर्ग की महिलाएँ उच्च अधिकारी के पास नहीं पहुंच सकती....फाइटर्स की डायरी में पुलिस सिपाहियों की कहानी ज्यों की त्यों लिखी।

■ आपके प्रिय रचनाकार कौन रहे हैं ?

- फणीश्वरनाथ रेणु, राजेन्द्र यादव, आशापूर्ण देवी, स्टीफन ज्यूग, हारवर्ड फास्ट, वर्जीनिया वुल्फ।

■ हिन्दी साहित्य में अंग्रेजी और उर्दू भाषा के समावेश पर आपकी टिप्पणी ?

- भाषा का समावेश अवश्यभावी है.... हम रेल शब्द का इस्तेमाल करेंगे न कि लौह-पथगामिनी, टाइम को टाइम कहते हैं न की समय, बाहर का कल्चर जुझता है। बाहर जाकर वहाँ का, कल्चर भी वापस आता है पॉप सांग्स, ड्रेस आदि आदि....महिलाओं पर बंधन रहे... पर अब बंधन टूटने लगे हैं....पहने कुछ भी.... संस्कार भारतीय हों। तस्सली देने के लिए खूब है...न बदलने पर हम खुश होते हैं पर जहाँ बदलाव नहीं आता, वही रुढ़ी बन जाता है.... समय नहीं बदलता....दिन-रात वही है, पर बदलता है मनुष्य....बदलाव से ही वन मानुष से मनुष्य बना।

■ हिन्दी की स्थिति से संतुष्ट हैं।

- हां। आज भी गिनो हिन्दी के अखबार ज्यादा हैं, अगर हिन्दी पढ़ी नहीं जाती तो हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ छपती क्यों हैं। भारतीय फिल्मों हिन्दी में हैं। पूरे देश में हिन्दी फिल्मों देखी जाती हैं। बैंगलोर में जब पूछा गया कि हिन्दी बोल सकते हैं ? तो लोग बोले, फिल्म समझते हैं....फिल्म मीडिया, हिन्दी को बज्जा देने या सिखाने में काफी हद तक सफल है। पर अपनी कोशिशें जारी रखनी चाहिए। मेरे घर पहले एक अंग्रेजी अखबार आता था, पर अब हिन्दी के दो आते हैं। मैंने अंग्रेजी पर हिन्दी को तरजीह

दी। घर में अंग्रेजियत को, हावी नहीं होने दिया, बच्चों के काम में। आज भी हिन्दी सहायक सिद्ध हुई.... जब बेटी डॉक्टर बनी और हिन्दी भाषी लोगों से उसे बात करनी पड़ी।

■ साहित्य में भतीजावाद चलता है ?

- भाई भतीजावाद कहां नहीं है। हर जगह है... राजनीति में, फिल्मों में, प्रोफेशनल फील्ड में संगीत में...पर अगर टैलेण्ट है, तो ये सब किसी की राह में रुकावट नहीं बन सकते। पर घर का सपोर्ट तो मिलेगा ही। सांपो के जाए बिल थोड़े ही खोदेंगे.... भाई भतीजावाद से घुस तो सकते हैं पर टिक नहीं सकते, फिल्मों में ऐसे कई उदाहरण हैं।

■ विज्ञापन के लालच में पत्र-पत्रिकाओं का स्तर गिर रहा है ?

- सच है। कोई अपने दम पर पत्र पत्रिका नहीं चला पाता और जो विज्ञापन देता है, वो अपनी कमज़ोर रचना भी छपवाएगा। रस पादकउ समेंकुछअ च्छीक हानीभी छपेगा....जैसे हलवाई के पास सब तरह की मिठाई होगी।

■ अब अन्त में एक निजी सवाल आपके सौन्दर्य का राज ?

- सिम्पल रहना और खान पान पर ध्यान देना।

सम्पर्क : 3037 -जे, सैनिक कॉलेनी, सेक्टर-49 फरीदाबाद,
मोबाइल : 9811514098



लघुकथा

ब्लाकेज

दिव्या शर्मा

हैरान, परेशान अपनों के चेहरों के बीच उसकी आँखें बंद होने लगी। दिल में तेज शोर मच रहा था। अनगिनत धक्कों का शोर जो धक्कों के रूप में बदल चुके थे। इन धक्कों को उसने अब तक दाब रखा था लेकिन अट्टहास करते यह धक्के एक-एक कर बाहर आने लगे।

माँ की मौत के कारण जमा पहला धक्का कुछ इतराते हुए उसकी आँखों में झांकने लगा। जिसे वह जोर से पीछे धकेल देता है।

दूसरा रोटियों को लेकर भाभी की दुल्हार का। जिससे नजरें फेर वह अपनी पत्नी की ओर देखता है।

तीसरा बेटी के असाध्य रोग ने दिया था। इस धक्के को वह अनसुना कर गया।

चौथा धक्का पत्नी की मौत ने दे दिया।

इस बार वह लड़खड़ाया लेकिन बच्चों की शक्ल देख संभल गया।

‘बहुत हिम्मत है इसमें। इसे कुछ नहीं होगा।’ रिश्तेदारों की आवाजें उसके कानों से टकराने लगी। इन आवाजों ने भी धक्कों का रूप धर लिया और साँप की तरह कुंडली मारकर बैठ गए। अब तक अपनी मुस्कान से वह धक्कों को मात देता रहा।

लेकिन पाँचवा धक्का उसे चोटिल कर गया क्योंकि यह धक्का दामाद की मौत के रूप में आया। धक्के अब खुश थे क्योंकि अब टग या थ एरव हउ नकेक ट्रोल्मॅथ ।। अस्पताल के बिस्तर पर पड़ा वह शख्स धक्कों के साथ अब भी युद्ध कर रहा था क्योंकि उसे जीतना था अपनी बेटी के चेहरे पर मुस्कान लाने के लिए। बंद होती आँखों को उसने सोने न दिया और विजेता बन मुस्कुरा उठा, धक्कों को फिर से दाबकर।

सम्पर्क : मकान नंबर 4, गली नंबर 9-ए, अशोक विहार,
फ़ेस-2, गुरुग्राम-122001



मानवीय व्यवहार को समझने में बहुत मदद करती है कविता

प्रस्तुति- रश्मि

ह

रियाणा की वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी व आजकल पंचकूला की अतिरिक्त उपायुक्त न केवल साहित्य से गहरे जुड़ी हैं बल्कि मिट्टी के पॉट्स तक बनाती हैं। स्वभाव से हंसमुख और

मिलनसार वर्षा हिसार की बेटी हैं क्योंकि यही ग्रेजुएशन की और यहीं रहते एचपीएससी की परीक्षा में राज्य भर में प्रथम स्थान पर आईं। वैसे वर्षा खनगवाल मूल रूप से चरखी दादरी के गांव मंदोला से जुड़ी हुई हैं लेकिन पिता श्री सूरजभान उप आबकारी व कराधान आयुक्त पद पर रहे जिसके चलते हिसार के सेक्टर पंद्रह में आवास बनाया और वर्षा की आठवीं के बाद ग्रेजुएशन तक की पढ़ाई हिसार में ही हुई। गवर्नमेंट कॉलेज से ग्रेजुएशन की। पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ से इतिहास में एम.ए. की और दोनों वर्ष गोल्डमेडलिस्ट रही। प्रस्तुत है उनसे बातचीत के कुछ अंश:

■ अफसर बनने की कैसी सोची ?

- पापा चूंकि खुद अफसर रहे तो उनकी इच्छा थी कि मेरी बेटी भी अफसर बने। शुरू से ही यह तय था कि मुझे प्रतियोगी परीक्षा देनी है। पापा और मम्मी की इच्छा और मेरी मेहनत ने मुझे प्रथम स्थान दिलवाया! मेरी मां राज कुमारी मुझे फलताप तदेखन हीप आईव योंकिस न्

1997 में वे इस दुनिया को अलविदा कह गयी थीं।

■ कहां से शुरू हुई हरियाणा में नियुक्ति ?

- सिरसामें ट्रेनिंग हुई। फिर सटीम जिस्ट्रेटके रू पम फतेहाबाद भी रही। इसके बाद शिक्षा व सूचना एवं जनसंपर्क विभाग, चंडीगढ़ में। शूगर मिल, करनाल की एम.डी.। घरौंडा में एस.डी.एम.। मार्केटिंग बोर्ड में सचिव। चंडीगढ़ प्रशासन में डेपुटेशन पर रही। सोशल वेल्फेयर और पर्यटन भी रहा। आजकल अतिरिक्त उपायुक्त, पंचकूला। यह रही मेरी यात्रा!

■ साहित्य में रूचि कब से ?

- कॉलेज के दिनों से ही। अंग्रेजी साहित्य में रूचि हुई। उपन्यास पढ़ती थी अगाथा क्रिस्टी और शरलॉक होम्स के! इस तरह मेरे जीवन के अनुभव बढ़ते गये।

■ चंडीगढ़ के दिनों में कैसे जुड़ी रहीं साहित्य से ?

- ए. सी. जोशी पुस्तकालय बराबर जाती थी। प्राचीन इतिहास में मेरी दिलचस्पी बढ़ती गयी। इस तरह इतिहास और संस्कृति से भी जुड़ाव बढ़ता गया।

■ फिर कविता की ओर कैसे आई ?

- कविता में मैं खुद को सहज महसूस करने लगी। हालांकि कथाव उ पन्यासप ढतीहूप ांचवीक क्षामेभीकुछ कविता जैसा लिखती थी। अपनी भावनाओं को कविता

में लिखने लगी। कि विस 'वेदनशील' होकर दुनिया को देखता समझता है। जैसे दूरबीन से दुनिया को देखता है लेकिन अपनी भावनाओं को पटरी पर लाने का संघर्ष ही कवि का संघर्ष कहा जा सकता है।

■ कवि कर्म को कैसा मानती हैं आप ?

- मानवीय व्यवहार को समझने का सबसे सही आधार है कवि कर्म। मानवीय व्यवहार को समझने में बहुत मदद करती है कविता! चाहे कवि किसी भी पद पर पहुंच जाये, उसका नजरिया या उसकी सोच नहीं बदलती। कार्यालय में भी दूसरों के मनोविज्ञान को समझने में यह नजरिया बहुत मदद करता है।

■ कौन-कौन से कवि पसंद हैं ?

- अंग्रेजी साहित्य ज्यादा पढ़ती हूँ तो शेक्सपियर और मिल्टन ज्यादा पसंद! वैसे हरिशंकर परसाई बहुत पसंद हैं हिंदी में। परसाई लिखते हैं- पुरुष रोता नहीं। जब वह रोता है तो रोम रोम से रोता है। उसकी व्यथा पत्थर में भी दरार कर सकती है! ऐसी बात परसाई ही लिख सकते हैं।

■ परिवार के बारे में बताइए ?

- पति योगेश कुमार भी एचसीएस अधिकारी हैं। एक बेटा और एक बेटी है हमारे परिवार में।

■ आपका कोई काव्य संग्रह आया है ?

- अंग्रेजी में - इन दी नेम ऑफ लव एंड गॉड!

■ कविता के अलावा और शौक ?

- मिट्टी के पॉट्स बनाना। कोविड में मिट्टी नहीं मिली तो नहीं बना पाई। वैसे फोटोग्राफी और रीडिंग भी!

■ कोई पुरस्कार ?

- सन् 2020 में गुड गवर्नेस पुरस्कार हरियाणा सरकार की ओर से! इतिहास में तो स्वर्ण पदक मिले ही।

■ आप अकादमियों से भी जुड़ी रहीं तो क्या कहेंगी इनके बारे में ?

- सरकार गंभीर है अकादमियों के प्रति। इनको बेहतर बनाने की अनेक योजनायें हैं जिन पर विचार चल रहा है।

■ अपनी किसी प्रिय कविता का अंश ?

- अपनी माँ की स्मृति में लिखी कविता :
My mother did not become the star,
to twinkle at night.
She turned into the flame of my candle,
and became my light.

सम्पर्क : 1034 बी, अर्बन एस्टेट-2, हिसार-125005

लघुकथा

क्या कहेंगे लोग

डॉ. सुषमा गुप्ता

‘तुम्हें क्या लगता है, आज वो आया?’ रास्ते की तरफ़ खुलती खिड़की ने घर की बैठक के दरवाज़े से पूछा।

हाँ, आज वह ज़रूर आया। ‘तुम्हें इतना यकीन कैसे है?’

‘पाँच दशक से देख रहा हूँ। इंसान की प्रवृत्ति समझने लगा हूँ। आदमी-औरत प्रेम में पड़ते हैं फिर बहुत अरमान लेकर शादी करते हैं। समय के साथ आपसी प्रेम दरक जाता है और पूरा जीवन बच्चों में गर्क कर देते हैं।’

‘गर्क क्यों कहा? अपने बच्चों के लिए तो सभी करते हैं।’

‘हाँ, पर ये इतना क्यों कर देते हैं कि बच्चे उस करे को अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझ नाशुक्र हो जाते हैं।’ रवि नाशुक्रा है?’ ‘यकीनन।’ ‘फिर तुम्हें क्यों लगता है वह आया?’

‘हाहा, सबसे बड़ा रोग क्या कहेंगे लोग। माँ कब से फोन कर रही थी पापा बीमार है, आज, पर लाटसाहब कह देता छुट्टी नहीं मिली। बाप के निधन पर भी नाट गया कमबख्त की टिकट नहीं हो पाई। माँ को बोला ये मकान बेच दो और पापा के सब कारज निपटा कर उसके पास विदेश आ जाओ।’ ‘फिर?’

‘फिर कुछ नहीं, माँ ने मकान बेच कर अपने लिए गंगा किनारे वाले आश्रम में आजीवन इंतजाम कर लिया। इसे फोन किया कि घर से कुछ अपना चाहिए तो ले जा, वे सब सामान बेच कर जा रही हैं। अब हड़बड़ा गया है। मकान जायदाद तो हाथ से गई ही ऊपर से जगहंसाई अलग कि बेटे के होते माँ वृद्धा आश्रम में रहेगी।’

‘लो आ रहे हैं लाटसाहब।’ घर के बाहर कार आ कर रूकी और वह अधिरता से अंदर बढ़ा। सामने माँ कुर्सी पर पापा की तस्वीर लिए बैठी थी। न दुआ, न सलाम, न प्रणाम, सीधा आरोप, ‘क्यों इस उम्र में ऐसी हठ माँ? किस बात का इतना अभिमान के मेरे होते आश्रम चल दी?’ माँ ने कुछ पल बेटे को देखा और ठंडे लहजे में बोली, ‘स्वाभिमान’ ‘क्या!’ वह अवाक् था।

‘अभिमान नहीं स्वाभिमान। मेरा सब ज़रूरी सामान आश्रम शिफ्ट हो चुका है। मैं जा रही हूँ। तुम्हारे बचपन की कुछ तस्वीरें और खिलौने पड़े हैं, चाहिए हों तो ले जाना, मेरे वो किसी काम के नहीं। न चाहिए हों तो घर बंद कर चाबी साथ वाली सुधा को दे जाना। नया मकान मालिक कल आ कर कब्ज़ा ले लेगा। मैं चलती हूँ मेरी टैक्सी आ गई है। खुश रहना।’

वें चली गई, खिड़की और दरवाज़े की आँखें नम थी और रवि की अब भी ‘सिर्फ़ अपमानित’।

सम्पर्क : 327/16-ए, फरीदाबाद

नहीं भाता

● धीरा खंडेलवाल

तुम्हें फूल पसंद है
और मुझे/भेंट करना भाता है
पर फूलों की खेती नहीं भाती/सच ये है कि
फूल उगाना आता ही नहीं
भाता भी नहीं

अन्न जो उपजता है
पकने पर ही कटता है
भरी जवानी तो वो
खेत में ही सजता है
खलियान भर जाते हैं
धान के ढेर से
जीवन देती है उपज
देर सबेर से

पर फूलों की खेती ?
इतने जतन से उगाना
नेहल नज़रों से सींचना
फिर....खिले फूल को
जवानी में ही
अपने हाथों से तोड़ना
टोकरी भर ले जाना हाट
बदले में पैसा लाना साथ
नहीं भाता....

सच पूछो तो
फूल खरीदना अच्छा लगता है
और तुम्हें वे भेंट करना ।
मैं फूलों की खुशबू में
समेट लेता हूँ
सारी यादें सारा संसार

फूलों का खेत नहीं
मेरे पास बस बगिया है फूलों की
मेरा मन....

चाहता हूँ
भर दूँ तुम्हारी झोली
कलियों से/और सुनूँ
उनके फूल बन खिलने की
अनसुनी आवाज़ ।

चुरा लिए हैं मैंने

● सुमेधा कटारिया

हाँ, चुरा लिए हैं मैंने
समय की अंजुली से
कुछ स्वप्न अपने लिए
जो भीतर तक
गहरा आए है मन
स्नेहिल, स्वप्निल कल के स्वप्न ।
हाँ, चुरा लिए हैं मैंने
वक्रत के पाशों से
कुछ ख्वाब अपने लिए
जो उड़ा गए हैं
मुझे दूर आसमान पर
आह्लाद भरी
स्वच्छन्दता के चंद ख्वाब ।
हाँ, चुरा लिए हैं मैंने
हाल की काया से
चंद जज़्बात अपने लिए
जो गहराई तक
सिहरा आए हैं मुझे
बादलों के बीच
लुकाछिपी करते
चाँद की मानिंद
सहलाते, गुदगुदाते
चंद जज़्बात ।
ज़मी की कशिश ने
स्वयं को भूलने नहीं दिया कभी
पर फिर भी चुरा लिए हैं मैंने
समय की अंजुली से
कुछ स्वप्न, कुछ ख्वाब,
चंद जज़्बात ।



मन जोगिया

● कुमुद बंसल

सुकून न बिकता किसी हाट,
ना बिकता किसी दुकान ।
छिपा बैठा गहरे मन,
न इसके धरा-आसमान ॥

कभी चाह में अटक गया,
कभी शीशे सा चटक गया ।
परम को पाने चला था,
पर जग में भटक गया ॥

नयन खोलूं या करूं बंद,
इन्हीं में बसता उसका जमाल ।
पिंड में ब्रह्मांड समाया,
अजब है उसका=कमाल ॥

एक कपाट खुलता,
दिखते सौ कपाट ।
रहस्यमय इस जग की,
आश्चर्य रेखा ललाट ॥

ना श्रद्धा ना हीआस्था,
उथला है कलयुगी मन ।
भीतर भरा संदेह जल,
ढोंग है नाम सुमिरन ॥

कृछ रह गया अभी तो शेष,
यही है असिद्ध की निशानी ।
इसी क्षण जो है सो है,
सिद्ध की यही कहानी ॥

न होली नना ही फाग है
डाल दिया उसने रंग लाल ।
अनंत दीप हैं जल न उठे,
लो आत्मा हुई निहाल ॥

रब के इश्क की चाकरी,
लुटा दी सब अमीरी ।
तन का शृंगार न भाए,
मन में रमी फकीरी ॥



बादलों से कहेंगे हम

● मीरा गौतम

बादलों से कहेंगे हम

पिघलें, बरसें, जाए अपने रास्ते
छितराएँ नहीं यहाँ-वहाँ
गुथे आटे की तरह
आसमान की नीली पराँत में

बादलों से कहेंगे हम
पगडंडियाँ बचाकर रखें/हमारे लिए
डुबो न दें उन्हें गहरे जल में

फिसलन ही सही
चलना ज़रूरी है
बचाकर रखेंगे पाँव उनपर

विध्वंस के बाद भी
जगहें मिल ही जाती हैं
अनंत संभावनाओं की तरह
नया घर बन ही जाता है

● ● ●

हिम शिलाएँ

धूप में पिघल रही हैं
हिम शिलाएँ और
मनुष्य की ऊष्ण साँसों से
अर्न्तध्यान हुए बर्फानी बाबा
लोग हाथ मलते हैं

आषाढ़-सावन-भादों में
सूखा या फिर उद्दाम बाढ़
भय की यात्रा है
आगामी भूमिका में
धरती गर्म हुई है
खौफनाक मुद्रा में

● ● ●

धरती बचेगी

धरती बचे/ज़रूरी है
सुनें हमवृक्षों की जज़ों में
पानी के संवाद
बड़ी फ़िक्रमंदी के साथ

सम्पर्क : पोस्ट बॉक्स नं. 27, गोल्डन ओक, हिसार रोड, सिरसा

सम्पर्क :

बेटी की बाट

● डॉ. शमीम शर्मा

माँ
पहली बार रोटी सेंकते हुये
तवे पर हाथ चिपका
तो तुमने मेरी अंगुली को
सीने से लगा लिया था
जब कभी ठोकर लगी और
ज़ख्मी हुआ पांव
तुमने चार बार मरहम लगाई
महावारी के दर्द में जब-जब चिल्लाई
तुमने पुचकार कर समझाया
यह दर्द तो जीवन भर का है।
इम्तहान के दिनों में
अपने हाथ से
सब्जी लगा-लगा रोटी की
कोर डाली मेरे मुंह में
बरसों एक-एक चीज़ इकट्ठी कर
भर दिया सन्दूक दहेज का और
मेरा रिश्ता तय होते ही तुम
भीतर वाले कमरे में जा-जा
लाल करती रही अपनी आंखें।
और अब मेरे विवाह के
तीस साल बाद भी
तुम बाट जोहती हो/मेरे आने की
फिर विदा करती हो
हर बार विदाई पर
पोंछती हो आंखें अपनी साड़ी के पल्लू से
और फिर लाल हुई अपनी आंखों से
मेरी बाट देखने में जुट जाती हो।
पर अब तुम्हें क्या हो गया है
बार-बार मेरे आने की बाट
जोने वाली मेरी माँ
अब तुम मुझे इस ज़मीन पर
आने से क्यों रोकती हो ?
तुम्हारा प्रतिरूप हूँ मैं
भावी माँ भी हूँ मैं
जो देखेगी बेटियों के आने की बाट।

सम्पर्क : 1668, अर्बन एस्टेट-2, हिसार

धरती मेरी माँ

● वन्दना यादव

यह धरती मेरी माँ है
इसके पूजन को मन-प्राण ले
एक-एक अस्थी कलश बनी और
लहू के गुंथे पुष्प हार ले/शीश चढ़ाने जाती हूँ
अपने देश की माटी पर मैं
तन-मन अपना अर्पण/सौगंध उठाए जाती हूँ
लगन लगाए माँ के चरणों में
स्वयं की भेंट चढ़ाने जाती हूँ
हे माँ, तुम्हारे रज कर्णों से
सीने पर सजे पुष्प हार ले/मतवाले गुंजित मन से
देश प्रेम की ज्योति में
लहु घृत चढ़ाती जाती हूँ।
अपनी माता की अति प्रिय
लाड़ली उसके उद्गारों में/नूर उसके नैनों का हूँ मैं
उसकी आन पर हर पल अपने
प्राण निछावर करती हूँ।
यह धरती मेरी माँ है/अपनी माता की रक्षा में
मातृ भूमि की आन पे
पुष्प बना लहु की बूंदों से
हार चढ़ाने जाती हूँ।
तिलक सजा पावन माटी का/अमृत पी नदियों के जल से
मुकुट चढ़ा पर्वत का सर पे
मात्र भूमि की रक्षा में/शीश चढ़ाने जाती हूँ
यह धरती मेरी माँ है/इसके पूजन को मन-प्राण ले
एक-एक अस्थी कलश बनी और
लहू के गुंथे पुष्प हार ले/शीश चढ़ाने जाती हूँ।
धरती माता के पूजन को/देश की माटी के गौरव को
बलिदानी के गर्वित मन को
निश्चय एक अडिग लिए मैं/सर्वस्व लुटाने जाती हूँ।
यह धरती मेरी माँ है/इसके पूजन को मन-प्राण ले
एक-एक अस्थी कलश बनी और
लहू के गुंथे पुष्प हार ले/शीश चढ़ाने जाती हूँ।
मेरे देश की माटी पर मैं
तन-मन अपना अर्पण करने
सौगंध उठाए जाती हूँ!

सम्पर्क : 4102 लाईस अपार्टमेंट, सेक्टर 19-बी,
द्वारिका, नई दिल्ली- 110075



नारी - शक्ति का दीया जलाएँ

● डॉ. उषा लाल

कलुषित होते तन-मन पर हम
कर्म-ज्ञान का लेप लगाएँ
ज्ञान-ज्योति की नव किरणों से
कलुषित तम को दूर भगाएँ
नारी - शक्ति का दीया जलाएँ।

कटुपन कभी बने न साथी
सेवा-भाव हो सच्ची थाती
स्वच्छता से जन का नाता
सब मन-प्राणों से योग रमाएँ
नारी - शक्ति का दीया जलाएँ।

काम-क्रोध का करें नाश हम
ईर्ष्या-बैर से रहें दूर हम
निर्धन को रोज़गार दिलाकर
घर-घर सबके खुशियाँ लाएँ
नारी-शक्ति का दीया जलाएँ।

बुरा न देखें बुरा न सोचें
सुनें बुरा न करें बुरा हम
वाणी को संयम में रखकर
रिश्तों की बगिया महकाएँ
नारी-शक्ति का दीया जलाएँ।

भ्रूण-हत्या का करें ख़ात्मा
बच्चों को सम हक़ दिलवाएँ
भ्रूण हत्या करने वालों को
बहिष्कार की राह दिखाएँ
नारी-शक्ति का दीया जलाएँ।

अधिकारों के पायदान पर
अपनी राहें स्वयं बनाएँ
बहिष्कार कर दहेज-प्रथा का
नित नवल उजियार फैलाएँ
नारी-शक्ति का दीया जलाएँ।

नव भारत निर्माण में हम भी
साथ सभी विकास सभी का
एक-एक भारत वासी को
नलल-नया नारा दे जाएँ
नारी-शक्ति का दीया जलाएँ।

सम्पर्क : 1228 / 13 अर्बन एस्टेट कुरुक्षेत्र
मोबाइल : 9466772474

कहां खो गई ?

● कमलेश मलिक

कहां खो गई ?
वह श्रद्धा जो रहती थी
कभी महाकवि 'प्रसाद' के
विश्वास-रजत नग-पग-तल में
और बहती थी
जीवन के सुंदर समतल में
हम खोज रहे हैं आज उसे
महिला दिवस में/आज वही श्रद्धा
पैंतीस टुकड़ों में कट- कट कर
बिखर गई है/घने जंगलों में
धंस गई है वीरान मिट्टी में
धूल में सने उन मांस के लोथड़ों से
कोई पूछे --
देह के टुकड़ों में कटने से पहले
कितने प्रहार मर्म ने झेले
क्या है वह गणित ?
पैंतीस या पैंतीस हजार
एक महिला खिलाड़ी
देश का झंडा फहराती है
खेल के मैदान में
फिर वही आंसू बहाती है
न्याय के विधान में
और फिर कोई अंजलि
मीलों घिसटती है लिपटकर
बदहवास मनचलों की गाड़ी के पहियों में
कभी बनती है विषय बहस का
क्या करती थी ?/कहां ठहरी थी ?
कभी वह गीतांजलि बन/कभी पुष्पांजलि
मांगती है अपने लिए श्रद्धांजलि
कब मिलेगी उसे
अपने आंचल के दूध की कीमत
कब सूखेगा ?
उसकी आंखों का पानी
कैसे बचेगी ?/उसकी अस्मिता
खड़ा है यह यक्ष प्रश्न/ हमारे सम्मुख

सम्पर्क : अर्बन एस्टेट, 16-बी, सुजान सिंह पार्क
सोनीपत (हरियाणा) मोबाइल : 9466348348



नहीं मरती स्त्री

● रश्मि बजाज

मनु ! जब होगा
सृष्टि का अंत
बचेगी स्त्री
जीवित जीवंत !
बदलकर
भांति-भांति के रंग
वह मिल जाती है
सब के संग,
है बहती रहती
वह हर पल-
हो जल/की भांति
सरल तरल/स्त्री है
इक जन्मेजया
पराजय में भी
ले सकती है आनंद
वह अपनी/जय का !
है स्त्री/के अंतस
गुप्तकक्ष/जहां प्रवेश
निषिद्ध सबका,
जब भी चाहती है
बैठ वहां/स्त्री हो जाती है
स्थितप्रज्ञा ...
है वह तो/इक सच्ची साधिका
जो बसती नहीं
सुदूर गुफा/प्रत्येक दिवस
प्रत्येक रात्रि/हो समाधिस्थ
अनेकबार/लौट आती है
वह योगिनी-करने अपना
निष्काम कर्म/संभालने अपनी
कर्मभूमि/सब षड्यंत्रों
के बावजूद
नहीं मरती स्त्री-
है स्त्री का
अमृत-कुंड छिपा
स्त्री-तत्त्व में ही....

सम्पर्क : श्रीकुंज, 154, विजय नगर, भिवानी-127021
मोबाइल : 9896661415

कौन हो तुम ?

● नमिता राकेश

अब तुम ही बताओ
कैसे करूँ परिभाषित/तुमको !
तुम कभी/ लय बद्ध हो
एक नृत्यांगना की तरह
तो कभी/ मुक्त छंद सी
चंचल नदी की मानिंद/ तो कभी
गजल की बहरों में बंधी
अरकान और मीटर के
तिलस्म में फंसी/ कोई स्त्री
जो/लुभावने प्रोलोभनों
की ओर/ हो जाती है आसक्त
कभी हाइकु सा सूक्ष्म रूप लिए तुम
कह जाती हो इतना कुछ
मानो गागर में सागर/कभी दोहे का शृंगार कर
तेरह ग्यारह तेरह ग्यारह
में पग-पग धरते हुए
मनभावन चाल से चलती हुई तुम
कर जाती हो/ हरेक दिल में घर
और कभी तो/ ना जाने कितनी तरह के
लोक छंदों में ढल कर
दिखाती हो रूप नए-नए
कि तुम्हें रचने वाला खुद
हो जाता है हतप्रभ/ जैसे ईश्वर अचंभित है
स्त्री को रच कर/अब तुम ही बताओ
हे कविता !
कैसे परिभाषित करूँ
तुमको/ बांध कर तुम्हें
किसी सीमित सी परिभाषा में
नहीं चाहती तुम्हारे विविध स्वरूप को मापना
जैसे बहुत मुश्किल है
स्त्री को परिभाषित करना
जो जनती है सृष्टि को/ और तुम जनती हो
असंख्य भावों को/ इसलिए
तुम्हें सिर्फ महसूस किया जा सकता है
परिभाषित कदापि नहीं

सम्पर्क : 202, टॉवर एच, पार्क ग्रैंडयोर, बीपीटीपी,
सेक्टर- 82, ग्रेटर फरीदाबाद-121004; मो. 9212483258

विविध रूपा नारी....

● भावना सक्सैना

नारी धरती
सहेजे वक्षस्थल
अकथ नमी ।
नर्म पँखुरी
पल में मुरझाए
मन नारी का ।
शुचि की द्युति
शतदल कमल
कांतिविहीन ।
पीत पर्ण सी ।
तितर बितर हो
स्त्री की आकांक्षा ।
बहती रही
पीयूष स्रोत सम
विषम में भी ।
धैर्य प्रतिमा
सह हर आघात
और निखरी ।
नारी कुशा सी
रौंदी जाती फिर भी
मस्तक ऊँचा ।
सोना बनता
तप कर कुंदन
ज्यों नारी मन ।
स्मृति मधुर
कभी करे विकल
हर्षाए कभी ।
याद की बूंदें
नयनों की सहेली
बसें कोर पर ।
बैरन यादें
दौज़ी आएँ आँगन
देख अकेली ।

सम्पर्क : 64, प्रथम तल, इंद्रप्रस्थ कॉलोनी, फरीदाबाद-121003



नारी सी

● ब्रजबाला गुप्ता

‘मैं’ नदियां, नारी सी
नहीं बंधनों में बंधना चाहूँ
पथरीले कंटीले रास्तों में
खुद अपनी राह बनाऊँ
हिमखण्डों से पिघलकर
बना अस्तित्व मेरा
पर्वतों से निकलती
सृजन करूँ नवजीवन
हाँ ‘मैं’ जीवनदायिनी धारा
ना ‘मैं’ रूकती ना ‘मैं’ थकती
निर्बाध गति से बहती
कभी इठलाती, बलखाती
समतल मैदानों में आ
उर्वर करती धरती
रूकना नहीं मेरी नियति
‘मैं’ नीर नहीं संचित करती
नीर बांटती, आगे बढ़ती
आती सब के काम
अंततः सागर में पाऊँ विश्राम ।

सम्पर्क : 480/34, जनता कालोनी, रोहतक
मोबाइल : 8708740150

मैं औरत हूँ

● अंजलि ‘सिफ़र’

किसी सहरा में हरियाली की सूरत हूँ मैं औरत हूँ
सफ़र की धूप में साये सी राहत हूँ मैं औरत हूँ
हवा आकाश मिट्टी जल अगन भी हैं ज़रूरी पर
नये जीवन की इक मैं भी ज़रूरत हूँ मैं औरत हूँ
चढ़ूँ मैं चाक पर हर बार इक मिट्टी नयी बनकर
मगर हर रूप में केवल मुहब्बत हूँ मैं औरत हूँ
नहीं हूँ चीज़ मैं कोई सजावट की ज़रूरत की
रहूँ जिस घर में भी उसकी मैं बरकत हूँ मैं औरत हूँ
मैं हूँ वो मोम जो अशकों की गरमी से पिघल जाए
‘सिफ़र’ टकराने पर आऊँ तो पर्वत हूँ मैं औरत हूँ

सम्पर्क : 666/11, न्यू कैलाश नगर, मॉडल टाउन, अम्बाला शहर

गज़ल

● मंजीत 'मीरा'

जो निगाहों से गिरी हो वो मुहब्बत हूँ मैं
कैसे कह दूँ तेरे अभिमान की दौलत हूँ मैं
तूने देखा ही नहीं जिस्म से हटकर मुझको
मैं न मानूंगी तेरे दिल की भी लज्जत हूँ मैं
जिस्म-ए-औरत ही नहीं हूँ मैं हूँ पूरा मजहब
क़द्र जो दिल से करो माथे की किस्मत हूँ मैं
आइना देख न पाया जिसे मेरे भीतर
आज कहती हूँ उसी प्यार की सूरत हूँ मैं
सत्य की खोज में छोड़ा था ज़माना जिसने
आज भी उसके सवालों की हकीकत हूँ मैं
किसकीन ज़रों ने हिमाकृत की मुझे छूने की
आइने तक के लिए सख़ा हिदायत हूँ मैं
आबलापाई ने रोकी तेरी मज़िल कैसे
तुझको मालूम हो फ़रहाद की हसरत हूँ मैं
मैं हूँ सीता मैं ही 'मीरा' मैं ही सावित्री हूँ
प्यार में खुद को मिटा दे जो वो औरत हूँ मैं

...

अगर इंसानियत का हर जगह पैग़ाम हो जाए
तो दुनिया में मुहब्बत का बड़ा सा नाम हो जाए
सलीके से ही चलना तुम मुहब्बत की मुंडेरों पर
कहीं ऐसा न हो ये ज़िंदगी कोहराम हो जाए
बहुत दिन से नहीं आया कोई चौपाल पर मेरी
मैं चाहती हूँ रफ़ाक़त की सुहानी शाम हो जाए
हमेशा बात रखना याद अपने ज़ेहन में मेरी
किसी का नाम उल्फ़त में नहीं बदनाम हो जाए
यही इक इल्लिजा मेरी है उस बंसी बजैया से
अगर 'मीरा' हूँ मैं उसकी वो मेरा श्याम हो जाए

सम्पर्क : 46, मीरानिल निवास, रमन एन्क्लेव,
सेक्टर-117, मोहाली-140307; मोबाइल: 6284997355

नन्हीं-सी बिटिया

● सीमा यादव

बाबुल के घर माटी के घरोंदे
बनाने वाली नन्हीं-सी बिटिया,
सयानी होकर बस अपनी
ही अलग दुनिया बसाती है ।
बहन बनकर भाई की कलाई में
रक्षासूत्र से उसके सुख-सम्पन्नता पूर्ण
जीवन की कामना करती है ।
बनकर 'माँ' ये संतान पर
अपना सुख चैन और नींद तजकर
बस अपनी ममता लुटाती है ।
कभी लक्ष्मी, दुर्गा और सरस्वती
जैसे विविध रूपों में पूजिता हुई,
कभी बनकर 'अन्नपूर्णा' देवी,
जन-जन का उदर तृप्त करती रही ।
नाजुक कलाईयों में भले ही
खनकती है चूड़ियाँ इसके मगर,
मुसीबत के समय ढाल बनकर,
यही तो पुरुष का साथ निभाती है ।

सम्पर्क : 106-ए, कुशालनगर, सेक्टर-69, गुरुग्राम

दोहे

● शीला गहलावत : 9888921147

टुकड़े टुकड़े फिक रहा, हर नारी का गात ।
नर भक्षी दिखला रहे, अपनी क्यों औकात ॥
घूँघट काढ़े कौन अब, हुई पुरानी बात ।
सकल काममें न रियाँ, मर्दों के देम त ॥
जल-मर कर ही दे रही, नारी अपने प्राण ।
दहेज लालची कर रहे, नारी का अपमान ॥
कैसे नारी के बचें, यहाँ मान-सम्मान ।
सारा जग तैयार है, करने को अपमान ॥
इस गुण ने ही कर दिया, रावण को मशहूर ।
सीताक नेह रकरर खा, न जख्म गया से दूर ॥
भारत की नारी बनी, जग में यूँ ही खास ।
खुद को साबित कर रही, ले मन में विश्वास ॥

आदतें

● किरण यादव

शुरू से ही मुझसे
अच्छी आदतें रही
धीरे-धीरे फिर मैंने
उन अच्छी आदतों में से
कुछ कम
अच्छी आदतें निकाल दी
ऐसे ही करते-करते
बहुत सी
अच्छी आदतें
मुझे छोड़कर चली गयी
गयी हुई चीजों को
मैंने कभी मुड़कर नहीं देखा
जबकि ये तो आदतें थी
अब
बाकी बची कुछ
गिनी चुनी आदतें मुझमें
जैसे
प्रेम, परमात्मा, प्रकृति
और सबसे ज़रूरी
इंसानियत
जिन्हें मैंने बचाये रखा है
जो पहली आदतों से ही
मुझमें विद्यमान थी
अब सोचती हूँ
अगर इन आदतों में से भी
कुछ निकाल दूँ
तो मेरे पास कुछ नहीं बचेगा
मैं और मेरा होना भी नहीं
बस यूँ मैंने सोचा
कि प्रेम के मार्ग से
प्रकृति के साथ
क्यों न परमात्मा
की ओर बढ़ा जाए
स्वयं में
आत्म दर्शन किया जाए।

सम्पर्क : गुरुग्राम

दोस्त वही है

● अलका शर्मा

जब ज़िन्दगी में रेगिस्तान की तपन हो
झुलसाती जलाती लू का डेरा हो
निराशा के बादल का चहुँओर बसेरा हो
तो सुकून भरी ठंडी फुहार बन
जो बरस जाए.... दोस्त वही है

जब शब्द व मौन में जंग छिड़ी हो
तनाव की झुर्रियाँ माथे पर पड़ी हों
दिल में घुटन और चेहरा मुरझाया हो
तो गुदगुदाती मीठी मुस्कान बन
जो फैल जाए.... दोस्त वही है

जब दुःख की फाईलों का ढेर लगा हो
आंखों से टपकता नमक जमा हो
अपनेपन को तरसता सूखा गला हो
तो कुल्हड़ चाय की चुस्की बन
जो तर कर जाए.... दोस्त वही है

जब दुनिया की भीड़ में मन अकेला हो
खोखले झूठे वादों का बोलबाला हो
पल-पल दिल खुशियों को तरसता हो
तो खिलखिलाने वाली खुशी बन
जो छा जाए.... दोस्त वही है

जब यादों की गलियों में फिर से जाना हो
पहले प्यार की खुशबू को चुराना हो
बिछड़े लम्हों को जी भर के जी लेना हो
तो उस महकते वक्रत में कशती बन
जो घुमा जाए.... दोस्त वही है

सम्पर्क : 7888579495



भारत की बेटी

● राजकरणी अरोड़ा

वेदवती हो या विश्वारा ।
सतत प्रवाहित रही तेरी वाग्धारा ।
आज भी तू ने शिक्षा और
क्रीड़ा-जगत् में नाम कमाया ।
राजनीति औ रणनीति में
सिक्का खूब जमाया ।

हाँकी हो या मुक्केबाजी,
तेरे जैसा और नहीं
अंतरिक्ष औ अभिनय में भी
कोई पदकों का ठौर नहीं ।
सेना के तीनों अंगों में जलवे तेरे कमाल ।
तेरे तीखे वारों से दुश्मन हुए बेहाल ।

कैप्टन शिवा !
सियाचिन में तू डटी रही ।
हिम-खंडो की बौछारों में
एक कदम तू हटी नहीं ।

पर हाय !
भ्रष्टाचार ने ऐसा भीषण आघात किया ।
तेरी अस्मिता को सर्वशः भूसात् किया ।

श्रद्धे !
जिहादी मानसिकता ने तेरे टुकड़ेकर डाले ।
फिर दारुण बेदरदी से जानवरों के किया हवाले ।
अंजलि !
तू रईसों के पहियों में पिसती रही ।
चित्थरों में कटी तू चीखती रही ।
भारत की बेटी ज़ार-ज़ार रोती रही ।
उसकी इज़्ज़त तार-तार होती रही ।

दानवता का खेल कब तक जारी रहेगा ?
जुल्म, अनाचार हम पर कब तक भारी रहेगा ?
कब तक हम नारी-गरिमा के गीत गाते रहेंगे ?
दुष्कर्मों की गाथाएँ सुनाते रहेंगे ?
अबला नहीं, सबला बनकर अब ऐसी हुंकार भरो ।
भ्रष्ट, दुष्ट इन रक्त-बीजों का, चंडी बन संहार करो ।

सम्पर्क : ऐ-15/ बी नेहरू ग्राउंड, फरीदाबाद

सबला

● डॉ. रमाकांता

नारी तुम कमजोर नहीं ॥
सृष्टि का आधार है नारी,
अबला नहीं अब सबला है ।
श्रद्धा, ममता धैर्यरूपा अणिमा
काली और कमला है ॥
माना सीता-द्रोपदी भी
अनादर का शिकार हुई ।
संकट गहराया था उन पर,
अस्मिता तार-तार हुई ॥
कौन कहता है काली रात की होती
कभी भोर नहीं ।
नारी तुम कमजोर नहीं ।
भामती अनुसूईया गंगा दुर्गा बन
धरती पर आई ।
रानी की झांसी रिपुदल पर
काल रूप में मंडराई ॥
डरी सहमी और घुटी-घुटी अब
नहीं रही नारी भाई ।
नारी नहीं किसी नर से कम,
अब सबको बात समझ आई ॥
बांधे रखे सब रिश्तों को, तेरे जैसी
डोर नहीं ॥
नारी तुम कमजोर नहीं ।
शिक्षा खेल विज्ञान जगत् और
अंतरिक्ष तक तेरी दौड़ ।
नित-नित करती चमत्कार,
बढ़ती जाती हर बाधा तोड़ ॥
निज क्षमता को पहचाना,
दिया समय प्रवाह को नया मोड़ ।
सीमा रक्षा और शल्य चिकित्सा में भी
नारी तू बेजोड़ ॥
अपना परिचय तुम स्वयं हो नारी,
तेरे जैसा कोई और नहीं
नारी तुम कमजोर नहीं ।
नारी तुम कमजोर नहीं ॥

सम्पर्क : 1014/20 दुर्गा कालोनी, रोहतक
मोबाइल : 9896213549

बिटिया!

● संगीता बैनीवाल

बिटिया!

तुम.....

प्रसून सी प्रफुल्लित मुकुलित हो
पाखियों सी किलोलित सुखकर हो
अकीदा पैजिनियों सी रुनझुनी सरगम हो
यानि कि.....

तुम आज भी महफूज हो।

बिटिया!

तुम्हारी.....

हंसी में निश्छल खनक है
सौन चिरैया सी चहक है
रौनक है परी रूप है
यानि कि.....

तुम आज भी महफूज हो।

बिटिया!

तुम तो.....

सीता सावित्री दुर्गा का प्रतिरूप हो
लक्ष्मी सरस्वती राधा का स्वरूप हो
महादेवी मैत्रेयी गार्गी सा विदुषी रूप हो
यानि कि.....

तुम आज भी महफूज हो।

बिटिया!

आखिर.....

कब तक खैर मनाओगी
कब तक यह सब सहोगी
कब तक अंग भंग होंगे
यूं ही बंद समाज के लोचन होंगे
बिटिया!

अब तुम्हें ही बदलना होगा

रूप दुर्गा का धरना होगा

महिषासुरमर्दिनी बनना होगा

खुद की खातिर खुद लड़ना होगा।

सम्पर्क : 204, जी.एच.-4, सैक्टर 27, पंचकूला

हिम्मत अभी बाकी है

● डॉ. सुरेखा शर्मा

हिम्मत अभी बाकी है

हिम्मत जोड़ ली मैंने

काम अभी बाकी है

उसकी रज़ा में मेरा

इम्तहान अभी बाकी है।

बाकी है अभी लम्बे रास्ते

और रास्तों की कठिनाईयां भी

रूकना नहीं मुझे बढ़ते चले जाना है

पांवों में मेरे जान अभी बाकी है।

रोज़ मिलेगा एक मोड़ नया

मंजिल तक पहुंचने से पहले

हर मोड़ पर जीत जाने का

इम्तहान अभी बाकी है।

ज़रें ज़रें से लड़ना है मुझे

रोशनी की खातिर

अपनी खुशी पाने का

इंतजार अभी बाकी है।

बसी है मुझमें जो खामोशी

देकर उसे जुबां

हर कोने तक पहुंचाने की

वो मेरी पहचान अभी बाकी है।

तय है कभी

टूट कर बिखर जाऊंगी

मगर, तय यह भी है

फिर संभल उठ खड़ी हो जाऊंगी

बिखर कर फिर संभलने की

हिम्मत मुझमें अभी बाकी है।

हिम्मत जोड़ ली मैंने

काम अभी बाकी

उसकी रज़ा में मेरा

इम्तहान अभी बाकी है।

सम्पर्क : 690, जुंडला गेट, करनाल- 132001

मोबाइल : 9896875604

दोहे : नारी-जीवन

● वीणा अग्रवाल

नारी का जीवन रहा, नदिया के दो तीर।
उसके हिस्से में रही, अनचाही सी पीर।।

पैदा होते ही जिसे, मिला बहुत अपमान।
जीवन भर देती रही, वह सबको सम्मान।।

घर औ बाहर खट रही, मिला नहीं आराम।
खूँटी के सम लादते, उस पर ही सब काम।।

नारी तूने रच दिया, रोज नया इतिहास।
धरा गगन हैरान हैं, देख तेरा विश्वास।।

माँप लीअ नैब हनब न,स दालुटातीनेह।
नारी तेरा प्रेम ज्यों, अमृत बरसे मेह।।

इस जीवन औ जगत में, मिली बहुत पहचान।
पुरुषों जैसे कर रही, ऑफिस जाकर काम।।

नारी ने सोचा कहां, मिले उसे अधिकार।
कर्तव्यों को प्रेम से, निभा लिया हर बार।।

नारी तेरी सादगी, शील और सत्कार।
संत महात्मा तर गए, जब मां लिया पुकार।।

नारी जिसके बिन लगे, घर जैसे शमशान।
घर में हो तो यूँ लगे, ज्यों मंदिर भगवान।।

धरती सम किरदार है, सर्दी हो या धूप।
मानव के निर्माण में, तेरा धैर्य अनूप।।

सम्पर्क : 1455 सेक्टर 10-ए, नियर समता पार्क,
गुरुग्राम-122001 (हरियाणा)

दोहे : माँ

● शकुंतला मित्तल

सदा रहे आनंद में, है तपमूर्ति प्रवीण।
छुपार हीहँ सपरीरकी,प डेन आभाक्षीण॥

मातृ यारअ नमोलहै,ज योंज डेकी धूप।
खुशियाँअ पनीवारी,म मताक इ करू प॥

माँ घर की गंगा जली, पाँचजन्य है शंख।
दुख सारे पीती रहे, सबको देती पंख॥

देखे इसी समाज में, अजब अनोखे ढंग।
अंत अकेली ही रहे, मिले न कोई संग॥

झुकी कमर से चल रही, मुख है खिला गुलाब।
बाँच कोई सकता नहीं, मन की गूढ़ किताब॥

माँ के पावन परस से, सजती जीवन-भोर।
निर्निमेष माँ ताकती, बच्चों के मुख ओर॥

विपद सामने हो खड़ी, माँ की लूँ मैं आड़।
आँचल शीश धरे चलूँ, देता राह पहाड़॥

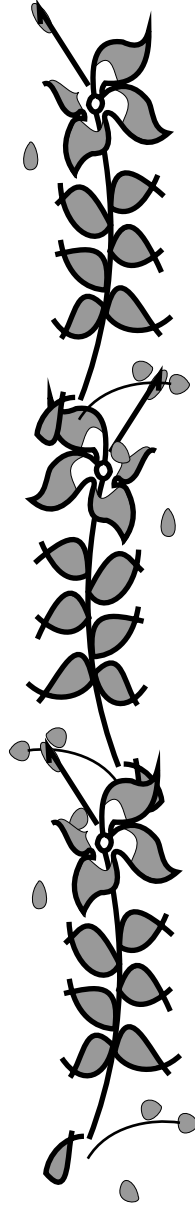
माँ घर की है रोशनी, माँ ममता उजियार।
सारे जग की दौलतें, माँ पर दूँ मैं वार॥

आँगन की तुलसी बनी, करती है कल्याण।
छूकर माँ को पलटते, अपशकुनों के बाण॥

मानसरोवर सा हृदय, माँ काशी कैलाश।
ईश्वर से पहले करूँ, माँ पर मैं विश्वास॥

माँ जीजा ने था गढ़ा, शेर शिवाजी वीर।
पाठ पढ़ाया निडरता, बने महा रणधीर॥

सम्पर्क : 32/4, प्रिमरोज, वाटिका सिटी, सोहना रोड,
सेक्टर 49, गुरुग्राम; मो. 9654517813



क्षणिकाएँ

● शारदा मित्तल

बेटी

परी न कहो
बेटी को बेटी ही रहने दो
दे दो पंख हौसलों के
भरने दो उड़ान
नभ में नीड़ बनाने को ।

कीमत

नित्य कड़वे घूँट
पीती हूँ
ज़िन्दगी मीठी
बनाने को ।

आग

अस्तित्व मेरा/भस्म हुआ
आग तेरे/अहम् की थी ।

मनोबल

कई बार कतरे
पंख मेरे ज़माने तूने
हसरत-ए-परवाज़
के सदके

अलख

जल-जल कर
बुझती हूँ/बुझ-बुझ कर
जलती हूँ/मैं नारी....
जीवन की अलख
जगाने को ।

बरगद हूँ

प्राण नहीं प्रसूता हूँ मैं
नानक नहीं तृप्ता हूँ मैं
अंकुर नहीं मृदा हूँ मैं
दीप नहीं शिखा हूँ मैं
जान गई अब दुनिया सारी
बोनज़ाई नहीं बरगद हूँ मैं ।

सम्पर्क : जे-1101, बैस्टेक पार्क व्यू, सेक्टर- 67, गुरुग्राम

हां! मैं बदल गई हूँ

● नीरू मित्तल ' नीर

सही कहा

हां मैं बदल गई हूँ
नहीं रही पहले जैसी
मृदुभाषी शर्मीली/स्वयंमुग्धा सपनीली
नीची पलकों पर सजाए
असंख्य सपनों के मोती
हर सांस के साथ/नई सच्ची दुनिया संजोती
हर किसी की बात मानती
हर ताने व्यंग पर रोती/फिर अदृश्य पंख फैला
किसी नई दुनिया में उड़ती
अब टिका लिए अपने पंजे मैंने
धरती पर ही संभल गई हूँ/हां! मैं बदल गई हूँ
पहले आंखों में मोती थे
अब मोतियाबिंद उतर आया
पहले सहती थी वज्र बन सब
टूटी दो चार हड्डियां तो
तन में स्टील भी समाया
घुटने इतने टेके सबके आगे
कि जुड़ ही गए पूरी तरह/अब घुटने भी नए पाये
हर गम छिपा/मुस्कुराने का अभिनय
किया इतना उत्तम
कि दांतों ने जवाब दे दिया
अब दांत भी इमप्लांट कराया
दिल का किया विस्तार इतना
सबको समेटा सबको प्यार किया
अब बाईपास कराके/दिल ने भी शॉर्टकट अपनाया
जाने कितनी दवाइयां खा
उथल-पुथल गई हूँ/हां! मैं बदल गई हूँ
तन बदला मेरा/न बदला मेरा
रुख बदला/सोच भी बदली बदली
भीतर की बनावट भी/कहीं स्टील कहीं इमप्लांट
कहीं सहारा श्वसन को भी
अब बदला बाहर भीतर सब कुछ
कहां रही पहले सी
सच कहते हो तुम/ मैं बदल गई हूँ
हां! मैं बहुत बदल गई हूँ

सम्पर्क : 40, सेक्टर 15, पंचकूला 134113



आत्मा का श्रृंगार कर लो

● प्रीति पाठक

आत्मा का श्रृंगार कर लो
कभी खुद से भी तो प्यार कर लो
इस भागदौड़ की जिंदगी में
कभी खुद का भी तो इंतज़ार कर लो।

मुश्किल नहीं खुद को चाहना
मुश्किल नहीं खुद से कुछ माँगना
कभी-कभी बिन माँगें भी
खुद की फरमाइशों का इज़हार कर लो।

आत्मा का श्रृंगार कर लो
कभी खुद से भी तो प्यार कर लो
माना तुम्हारी व्यस्तता तुम्हें रोकती होगी
माना तुम्हारी ज़िम्मेदारियाँ तुम्हें टोकती होगी।

पर इतना भी काम क्या ?/खुद को भूल जाने में
बैठो तुम साथ अपने/कभी खुद को सँवारने में।

इस भागदौड़ की जिंदगी में
कभी खुद पर भी तो उपकार कर लो
आत्मा का श्रृंगार कर लो
कभी खुद से भी तो प्यार कर लो।

कितना कुछ बदला है/बीते इन सालों में
क्या पाया क्या खोया है/अपने जीवन की राहों में।

आज भी समय के पीछे भाग रही हो तुम
दूसरों के आराम खातिर जाग रही हो तुम

इस भाग दौड़ की जिंदगी में
कभी खुद का भी तो ख्याल रख लो
आत्मा का श्रृंगार कर लो
कभी खुद से भी तो प्यार कर लो।

कर्म तुम्हें तो करना है/जो इस दुनिया में आई हो
फिर क्यों करना नजर-अंदाज खुद को
जब सारी खुशियाँ तुम से ही आई हों।
इस भाग दौड़ की जिंदगी में
कभी खुद का भी तो आभार कर लो
आत्मा का श्रृंगार कर लो
कभी खुद से भी तो प्यार कर लो।

सम्पर्क : फरीदाबाद (हरियाणा)

स्त्री

● शिखा श्याम राणा

वो/एकटक
शून्य में झाँकती
जब देखती है
अनंत के भी/आर पार
तो न उसकी आँखों में
कोई चमक होती है
न उसके होंठों पर
मुस्कान
न कोई विषाद होता है
न उदासी
वो शून्य को ताकते हुये
स्वयं जड़ हो जाती है
और उसका जड़ होना ही
कचोटता है मुझे।

वो/एक आहट पर
अचानक हीलौट आती है
कहीं दूर फैले/शून्य से
ठिठक कर मैं विचलित होता हूँ
उसके लौट आने पर
मगर वो
शून्य को भंग करती है
अपनी मुस्कूराहट से
मैं उसकी मुस्कूराहट पर
मुग्ध होता हूँ।

वो/वर्तमान में
एक यांत्रिक मशीन सी
निपटाती है हर काम
संवारती है
हमारी उथल पुथल भरी
जिंदगी/बिना शिकन बिना
शिकायत/और गाती है
अपने ही उल्हास
अपनी ही लय में
जिन्दगी का चलायमान
कोई सुरीला गीत

सम्पर्क : 2518, सेक्टर- 15, पंचकूला

और चांद हर बार उतना ही पवित्र

● रोज़लीन

फूलों की रंगत
उतनी ही गहरी,
हर मौसम में हवा
उतनी ही सहज,
औंस कण
उतने ही आकर्षक,
गंध !
उतनी ही प्रखर,
और-
सूर्य की तपिश
वैसी ही
अद्भुत सौंदर्य से सराबोर करती
छेड़छाड़ करती
तो कभी -
हर बार की तरह
उतने ही अधिकार से
मुझे झिंझोड़ती
और प्रश्न करती,
मिट्टी
उतनी ही ममता से भरी
नीर उतना ही चंचल
और चांद....
हर बार उतना ही पवित्र

दोस्त !
कहीं तो-
कोई दृश्य
कोई स्वर
कोई खुशबू
उलझी रहने दो
फिर ...आखिर
कुछ तो बचा रहे
तुम्हारे नियमों
तर्कों, कारणों, परिणामों
और -
फिजूल दिखावों से बाहर ।

सम्पर्क : 535, गली नं. 7, कर्ण विहार, करनाल- 132001

गौरव गुड़ियानी का

● लाज कौशल

हरियाणा के पूत लाडले
इस माटी याणी का
गाती हूं मैं गीत आज
गौरव गुड़ियानी का

गुड़ियानी के लाल कमल
शत-शत नमन हमारा
जब यह माटी हुई गुलाम
तुम ही ने इसे सहारा

कर्नल हो या और कोई
नहीं किसी से डरते थे
स्वाभिमान से जीते थे
अपने वतन पर मरते थे

सदियों से इस देश पर
छाया था घोर अंधेरा
विदेशी लोग आ-आकर
करते थे यहां बसेरा

पग-पग पर बाधाएं थी
हमें चारों तरफ से घेरा
लेकिन आपके पत्र ने
किया था यहां सवेरा

लेखनी के बल पर ही
गौरों को दूर भगाया
सब बाधाएं दूर हुई
हम सबका मान बढ़ाया

भारत मां का अमर वीर
बिल्कुल नहीं घबराया
गोरे भी भयभीत हुए
उनका मन भी थर्राया

करती हूं विराम अब
मैं अपनी वाणी का
गाती हूं मैं गीत आज
गौरव गुड़ियानी का

सम्पर्क : एसोसिएट प्रोफेसर,
राजकीय महाविद्यालय, कोसली

बाबुल का किरदार

● शकुन्तला काजल 'शकुन'

पर्वत-सी तस्वीर यकायक, आई मन के द्वार।
उठा लेखनी लिखने बैठी, बाबुल का किरदार॥

उमड़-घुमड़ कर बदरा की ज्यों, घिर-घिर आई याद।
नहीं ठहरता पल भर जिनमें, कोई भी अवसाद॥

अटल हौसला संगी जिनका, मित्र ही जायदाद।
देश हितेषी करें ईश से, वे अक्सर फरियाद॥

सवा सेर के जिगरे वाले, अद्भुत साहूकार।
उठा लेखनी लिखने बैठी, बाबुल का किरदार॥

बनकर घोड़ा बिटिया का खुद, मिला आपको चैन।
ज़रा चोट लग जाती मुझको, हो जाते बेचैन॥

देख अचंभा होता मुझको, पापा के जज्बात।
तभी नारियल की उपमाएं, पाते सबके तात॥

डॉट-डपट तो याद नहीं पर, भूली नहीं दुलार।
उठा लेखनी लिखने बैठी, बाबुल का किरदार॥

भले-बुरे का भेद सिखाकर, दे संगत का ज्ञान।
कहा पिता ने बढ़ो लाडली, तुम मेरा अभिमान॥

मुखर बनो सशंय मत रखना, खुद पर हो विश्वास।
सीख सदा ऐसी ही देकर, मन में भरा उजास॥

पंख मिले उनकी बातों से, देख सकी संसार।
उठा लेखनी लिखने बैठी, बाबुल का किरदार॥

पर्वत-सी तस्वीर यकायक, आई मन के द्वार।
उठा लेखनी लिखने बैठी बाबुल का किरदार॥

सम्पर्क : जीन्द (हरियाणा)

औरत की ज़िन्दगानी

● डॉ. राजकला देशवाल

औरत की या ज़िन्दगानी,
क्यूँ तपती जलती रेत सी सै।

उसका तन सै राख की ढेरी,
बेशक दिखै हरा-भरा खेत सी सै।

उसके चारुं ओड़ गमां का अन्धेरा,
जलै चाहे वा हरदम ज्योत सी सै।

समाज के खोखले, पुराणे नेम-धरम,
करै उसके अरमानां की मौत सी सै।

बाबल के घर म्हं जनमे पाच्छै,
राखी जा न्यूं जणू मेहमान सी सै।

ब्याह हो कै चाली जा आगले घर म्हं,
सौंप कै सब कुछ, फेर भी पराई सी सै।

हाय, इसतैं घणा और के जिकर करूं,
बीरां की जात तै, दर्दा की किताब सी सै।

आज तम्म सबतैं न्यूं बूझणा चाहूं सूं,
औरत की गेल्यां जमाने की क्यूं दुभांत सी सै।

सम्पर्क : 116, सैक्टर-15, सोनीपत (हरियाणा)

भगत सिंह

● पूनम जोशी

भगत सिंह दीवाने क्यात्रै फांसी खाई,
राजगुरु और सहदेव न्यूये जान गंवाई,

जो होवै था होवण देते क्यूं ले बैठे पंगा,
संसद में था बम गिराया करा नहीं किम्मे दंगा,
भगत सिंह बीर मेरे,
थी जान कीमती भाई,

फांसी ना लगती जिंदा रहता तो जाणै के कर जाता,
आज म्हारे भारत का नक्शा बदला बदला पाता,
भगत सिंह बीर मेरे गलती कर दी भाई,

भगत सिंह गुरु सहदेव ने वापस राम लौटा दे,
मेरे देश के हर बच्चे में जज्बा उस्सा जागा दे,
राम के चरणों में,
रो रो देऊं दुहाई,

भगत सिंह दीवाने क्यात्रै फांसी खाई।

सम्पर्क : चरखी दादरी (हरियाणा) मोबाइल : 7988806585

गीत

● चाँदनी केशरवानी सुगंधा

भोली-सी सूरत है तेरी, नैन बड़े मतवारे हैं
मन-धड़कन-साँसे मेरी सब, तेरा नाम पुकारे हैं।

मैंने तुमको पढ़ा यहाँ है, आखर-आखर चूम कर।
गीतों में भी गाती हूँ मैं, तुमको अक्सर झूमकर।
सपनों के हर पल भी मैंने, तेरे संग गुजारे हैं।
मन-धड़कन-साँसे मेरी सब, तेरा नाम पुकारे हैं।

लबप रख मोशीर खतीहूँ, अँखोंसे क हद तीहूँ
नाम बताना हो अपना पर, तेरा ही ले लेती हूँ।
तेरीख तिरि नअँखों, कि तनेख वाबसँ वारेहूँ।
मन-धड़कन-साँसे मेरी सब, तेरा नाम पुकारे हैं।

सच्ची मेरी प्रीत कहो तो, हृदय चीर दिखलाऊँ मैं,
इक दूजे बिन प्राण-हीन हम, जग को क्या जतलाऊँ मैं
प्रणय हमारा एक नदी है, हम दो इसके धारे हैं
मन-धड़कन-साँसे मेरी सब, तेरा नाम पुकारे हैं।

सम्पर्क : गुरुग्राम (हरियाणा)

बखत इसा भी आणा

● कमलेश गोयत

मंगळ ग्रह की तरकारी, बैठ चांद पै खाणा।
धरती पै तो गरीब रहेंगे, बखत इसा भी आणा ॥ टेक ॥

मंगळ ऊपर मशीन चलेंगी, होगा नया सवेरा,
धरती आळा रहया करेगा, उसपै वर्ग कमेरा,
मंगळ पै मैं करूँ नौकरी, होगा घमंड भतेरा,
राकेट जहाज नए ढाळ के, लगै रोज का फेरा,
होगी तनखा देखण जोगी, डालर का कमाणा।
धरती पै----- ॥ १ ॥

चांद ऊपर रहया करेंगे, राजा और व्यापारी,
घर बणेंगे पोलीथीन के, छोटी च्यारदीवारी,
बस्ती होगी जुड़ी तार तैं, ना हळवी ना भारी,
आक्सीजन के पंखे होंगे, जल की धारा न्यारी,
धरती माता सब देवैगी, पर मानेंगे बिराणा।
धरती पै----- ॥ २ ॥

रूल बणेंगे ऊपर तैं, तरले कहण पुगावेंगे,
इसे कैमरे आ ज्यावेंगे, तरला सब दिखावेंगे,
मंगळ चांद पै बैठे बंदे, धरती तैं बतळावेंगे,
दूर होगा धरती का, ऊपर तैं टिकट कटावेंगे,
नदी समंदर कई खो ज्यांगे, निरी रेत का पाणा।
धरती पै----- ॥ ३ ॥

कलपुर्जे से माणस होंगे, दया ना धरम होगा,
आत्म चिंतन कुछ ना होगा, जीणे का भरम होगा,
तीन ढाळ की दुनिया म्ह सूरज एक गरम होगा,
भारत माता प्यारी म्ह, सबतैं बढ करम होगा,
कह कमलेश गोयत उस तरकी म्ह, यू गीत लगै पुराणा।
धरती पै----- ॥ ४ ॥

सम्पर्क : 8607065396

पनघट

● सुशीला जांगड़ा

पनघट पर जाना हे सखियो छूट गया
आहे टूटी का होग्या इंतजाम
सखियां तैं हे मिलना छूट गया
काला दामण और चुन्दड़ी नाड़े गये
हंसली, गुलीबन्द, कण्ठी, झालरें गये
आहे झांझण की उठै झनकार
तागड़ी का पहरना छूट गया
आहे टूटी का होग्या--
सिर पर बंटा ए टोकणी
संग में थी ननदी वा छोटणी
आहे हाथां में नेजू र डोल
पानी का भरणा छूट गया
आहे टूटी का होग्या--
ओढ़ पहर कै हे पानी लावें थी
सखी हे सहेली मिल जावें थी
आहे होती प्रेम की दो बात
कुंए पै मिलणा छूट गया
आहे टूटी का होग्या इंतजाम
सखियां तैं मिलणा छूट गया
पनघट पर जाना हे सखियो छूट गया
आहे टूटी का होग्या इंतजाम
सखियां तैं हे मिलणा छूट गया

सम्पर्क : 9034842454

घणा दिनां में गांव गई थी

● सुरेखा यादव

घणा दिनां में गांव गई थी
मां की ममता बुला रही थी,
बाबा की पथराई आंखे
दरवाजा पै देख रही थी।

पील काकड़ी प्यारी लागै
जांटी कीकर न्यू ही खड़ी थी,
रस्ते में पणिहारी दिखी
दौगड़ ठाई ठाई खड़ी थी।

वो ही झाड़ बोझड़े वो ही
वो ही चणे भूगड़े वो ही,
शीशम की ठंडी छाया में
वो ही धमा चौकड़ी वो ही।

मां के हाथ की वो ही रोटी
भाभी नै चटणी जो घोटी,
भाई की खातिरदारी नै
आंख भिगोई जो थी सूखी।

भाई बणकै खेलै भतीजे
मां आगै तो बाबा पीछै,
बहण भतीजी बण कै खेलै
भाभी भागै आगै पीछै।

नांगल वाली बुआ आई
खावण नै कुछ मीठा ल्याई,
और छोटणी म्हारी बुआ
फट्या पजामा सीमण ल्याई।

आई बहाण भायली आई
किस्सा की गठड़ी भर ल्याई,
नीम तलै ना बैठ खाट पै
ठहाका की बाजै शहनाई।

न्यारे नाज अर नखरे न्यारे
न्यारे सैं रिवाज भी म्हारे,
समझण आले समझ गए सब
न्यारे मन के, मन के म्हारे।

सम्पर्क : पंचकूला (हरियाणा)

आ जाइयो हरियाणे में

● सविता गर्ग 'सावी'

गुज़की चा जे पीणी हो तो
आ जाइयो हरियाणे में
दूध दही के ठाठ कसूते
आ जाइयो हरियाणे में
बाजरे की रोटी ऊपर
काज़बिलोणी में तै टिंडी
बैठ कै चूल्हे आगै जीमण
आ जाइयो हरियाणे में।

नार नवेली रूप गज़ब का
कहर जिगर पै ढावैं
हांसी ठट्टे खूब चलें आज़े
हंस-हंस कै बतलावैं
पाणी ल्यान्दी गजबण देखण
आ जाइयो हरियाणे में
चूल्हे आगै बैठ कै जीमण
आ जाइयो हरियाणे में।

सुख-दुख के सब साथी सैं
आड़े तगड़ा भाई चारा
बार त्योहार की रौनक न्यारी
बहे प्रेम की धारा
कोरडे आली होली देखण
आ जाइयो हरियाणे में
चूल्हे आगै बैठ कै जीमण
आ जाइयो हरियाणे में।

कातक नहावन जावें छोरी
गीत राम के गावैं
बजा-बजा के इकतारा
मीरा के शबद सुणावैं
बैठ कै पीजेपै बतलावन
आ जाइयो हरियाणे में
दूध दही के ठाठ कसूते
आ जाइयो हरियाणे में।

सम्पर्क : 895, सेक्टर-7 पंचकूला (हरियाणा)

मोबाइल : 9501167168



सुदर्शन रत्नाकर

दिदा

प

लक झपकते पूरे आश्रम में ख़बर जंगल की आग की तरह फैल गई कि सुबह रंगों की होली खेली जाएगी। यह विधवाओं के आश्रम के इतिहास में पहली बार हो रहा था। सभी के चेहरों पर स्मित की रेखा फैल

गई। हर उम्र की विधवा के जिस मन में, खुशी की कोई आशा ही नहीं थी, उसी मन में आज हिलोरें उठ रही थीं। उन्होंने कभी सोचा भी नहीं था कि उनकी सफ़ेद साड़ियों और रूखे चेहरों पर कभी रंग भी लग सकता है। बातें करती-करती मन में एक खुशी लिए सभी सो गईं लेकिन झरना की आँखों में नींद नहीं थी। जबसे वह यहाँ आई है उसने लौटकर पीछे कभी नहीं देखा। अपने मन पर संयम रखे समय काटती रही। लेकिन आज होली के एक शब्द से उसके संयम का बाँध टूट रहा है और टूटा हुआ मन पीछे लौट रहा है, वह कुछ सोचना नहीं चाहती पर स्मृतियों की तो जैसे बाढ़ आ रही है। इस बाढ़ से बचने के लिए वह बिस्तर पर उठकर बैठ गई। यानल गानेक प.यासा किया लेकिन बरसों का ध्यान लगाने का अभ्यास निष्फल हो गया। मन तो अतीत में भटक रहा है, ध्यान कहाँ लगता! वह कमरे से बाहर आ गई। बरामदे में रखे पानी के लोटे को एक ही साँस में पी लिया। कुछ बची बूँदें चेहरे पर छिड़क लीं। पूरे आश्रम में इस समय नीरवता का साम्राज्य था। वह खुले आसमान के नीचे आकर बैठ गई। नभ नील-झील में तैरते चाँद की चंचल किरणें चारों ओर अठखेलियाँ कर रही थी। तारों की छटा निराली थी और वातावरण में ठंडक। पर वह गर्मी-सर्दी के एहसास को तो भूल ही गई थी। तटस्थ जीती रही। वर्जनाओं को सहती रही।

रात का दूसरा पहर, गहन नीरवता और चाँद को निहारती वह अकेली। यह भी वर्जना है। यह उसके अधिकार में नहीं है। तभी हॉल के दूसरे छोर से उसे एक परछाई अपनी ओर आती दिखाई दी, वह डर गई। चेहरे को घुटने में दबाये वह पौधे की ओट में होकर बैठ गई। तभी उसे अहसास हुआ कि वह साया पास आ गया है। उसने अपने सिर पर किसी के हाथ का स्पर्श महसूस किया। वह और सिकुड़कर बैठ गई। तभी उसे स्वर सुनाई दिया, “घबराओ मत, मैं हूँ, दिदा। झरना हो न तुम।”

दिदा का स्वर सुनकर वह घुटनों से अपना सिर ऊँचा उठाते हुए सीधी होकर बैठ गई।

“इतनी रात गए यहाँ अकेली क्यों बैठी हो, यह आश्रम के नियम के विरुद्ध है। चलो भीतर चलो, वैसे भी बाहर मौसम ठंडा है।”

दिदा का स्पर्श और स्नेहिल झिड़की से वह पिघल गई। सीने में कुछ अटका-सा बाहर आने को हो गया। आँखों में समाया खारा पानी बूँदें बनकर उसके साँवले गालों पर बहने लगा। दिल की हुड़क ख़त्म नहीं हुई तो दिदा की धोती से आँखें पोंछकर उसी में सिमटकर सिर गोद में रख दिया। वह उसकी कोई नहीं होती। पर एक वह ही तो है जिसके सामने वह अपने मन की बात कर लेती है अपनी पीड़ा को कुछ क्षणों के लिए भूल जाती है। पर बेचारी दिदा उसकी पीड़ा को कौन समझ पाया। यहाँ दुख तो सबके एक जैसे हैं, पर दिदा। उसी ने तो बताया था कि जब वह केवल पांच वर्ष की थी तो उसका विवाह हो गया था। माता-पिता की सात संतानों में वह पाँचवें नम्बर पर थी। गरीब माँ-बाबा ने अपने कर्तव्य से मुक्ति पा ली। गाँव में

लड़कियों की शादी ऐसे ही पाँच, छह, सात में हो जाती है। विवाह क्या होता कुछ पता नहीं, नई लाल साड़ी, चूड़ी और सिंदूर बस इतना भर जानती हैं। वह भी इतना ही जानती थी।

उस वर्ष प्रचंड गर्मी पड़ी थी। तालाब – पोखर सब सूख गए। पशु-पक्षी तक पानी की बूँद-बूँद को तरस गए। सोने पर सुहागा, कई गाँवों में हैजा फैल गया। दिदा के ससुराल के गाँव में भी फैला। सफ़ाई, दवाई का अभाव। प्रतिदिन कोई न कोई काल कवलित होता गया और फिर एक दिन दिदा का पति भी चल बसा। सात फेरों का रिश्ता टूट गया। वह गाँव तो कभी गई ही नहीं थी, पति नहीं रहा तो ससुराल कैसा इसलिए उन्होंने दिदा को अपने पास रखने से साफ़ इन्कार कर दिया। वह बेचारी तो विधवा शब्द का अर्थ भी नहीं समझती थी। बस इतना जान पाई थी कि विवाह का मतलब, लाल साड़ी, चूड़ियाँ और विधवा का अभिप्राय यह सब कुछ उतार कर सफ़ेद धोती और बालों का कट जाना होता है। वह दो वर्ष तक माँ-बाबा के पास रही। उस छोटी – सी बच्ची पर सैंकड़ों बंदिशें लग गई। खाने में उबला दाल-भात, हँसना – खेलना, बाहर जाना मना। माँ सारा दिन घर का काम करवाती और साथ गालियाँ भी देती।

और फिर एक दिन उसकी माँ की मौसी गाँव में उससे मिलने आई जिसे विधवा होने के बाद ससुराल वालों ने पीटकर घर से निकाल दिया था और बच्चों को अपने पास रख लिया। कहाँ जाती वह? गरीब परिवारों में मायके में भी कोई स्थान नहीं होता। ढलती उम्र और बेसहारा अशिक्षित औरत जाए भी तो कहाँ? चैतन्य महाप्रभु के आदेशानुसार वह वृंदावन में जा बसी। कई वर्ष हो गए। बच्चे बड़े हो गए थे लेकिन उन्होंने भी कभी सुध नहीं ली। पर माँ का मोह है न। बरसों बाद भी त्याग नहीं पाई। पैसा-पैसा जोड़कर टिकट लेकर मिलने चली आई पर बच्चों का मोह नहीं फूटा। माँ से मिलने आई तो उसने चलते हुए सात वर्ष की दिदा का हाथ उसे थमा दिया। दो जोड़ी धोती और चार मुट्ठी चावल बाँधकर देते हुए कहा कि मौसी के साथ तीर्थ घूम आओ। कुछ नहीं समझी वह उस समय। पर समय ने उसे सब कुछ समझा दिया था। साठ वर्ष हो गए। उसके बाद वह कभी लौटकर नहीं गई। न ही कोई मिलने आया। विधवा हो जाने से रक्त के सम्बन्ध भी टूट गए। कुछ वर्ष मौसी साथ रही फिर वह भी चल बसी।

वृंदावन आने पर कुछ दिन तो खुश रही लेकिन शीघ्र ही

उसे विधवा होने का क्रूर सच समझ आने लगा था। मौसी उसे अपने साथ ले जाकर मंदिरों, गलियों में हाथ फैलाकर सारा दिन भीख माँगती। कुछ दुत्कारते और कुछ दया कर चंद पैसे हथेली पर रख देते। उन पैसों से कभी तो भरपेट खाना मिल जाता और कभी भूखे भी सोना पड़ता। किराए की छोटी – सी कोठरी में उन जैसी दस बारह और महिलाएँ होती थी। ज़मीन पर बस सीधे सोने भर की जगह, हिलने – डुलने की नहीं। न कोई पानी, न रोशनी। सुबह अँधेरे में सभी उठ जातीं। दूर खाली जगहों पर शौचालय जातीं और नदी में नहाकर फिर वही दिनचर्या। वृंदावन की हर गली में मुँडे सिर को सफ़ेद धोती से ढके सैंकड़ों विधवाएँ हाथ फैलाकर भीख माँगने को तैयार हो जातीं।

मौसी जीवन से थकने लगी थी। उसने अब मंदिर में जाना शुरू कर दिया था। चार घंटे तक भजन कीर्तन के तीन रुपए मिल जाते थे। वह दिदा को भी साथ ले जाती। उसकी आवाज़ बड़ी मधुर थी। सुरताल में बड़ा सुन्दर गाती। बहुत सारी विधवाएँ उसे जानने लगी थीं। मंदिर से जो पैसे मिलते थे उन्हीं से वह कोठरी का किराया देने लगी। खाने में कम होने पर फिर से भीख माँगनी पड़ती। बाद में आश्रम में जगह मिल गई। रहने के बदले में उसे मंदिर और आश्रम की सफ़ाई करनी होती थी।

दिदा को वृंदावन में आए पाँच वर्ष हो गए थे। मौसी बीमार रहने लगी थी। कोई दवादारू तो थी नहीं। महीनों बीमारी से जूझती रही, तड़पती रही और फिर एक दिन आत्मा उसके जर्जर शरीर को छोड़कर मुक्त हो गई। वह अकेली हो गई। अ भीत कम पैसीक 1अ गुलीप कड़करच लर हीथ 1। आश्रम और मंदिर में जानती तो सबको थी लेकिन मौसी की तरह कोई नहीं थी जिसका हाथ पकड़कर चलती, घर की याद आने पर उसके सामने रो लेती। मन की बात करती। बच्चों की तरह मचलती। उसे पहली बार लगा कि इस बड़े संसार – सागर में वह नितांत अकेली गोते खा रही है और डूबने के डर से वह धोती के कोर में चेहरा छुपाकर रो लेती। पहली बार जब उसे अपने महिला होने का अहसास हुआ तो वह डर गई। उसकी इस स्थिति को देखकर आश्रम की एक वयोवृद्धा ने उसकी सहायता कीथ 1। कतनीब डी विडम्बनाथ 1। कव ह महिला बाद में बनी और विधवा पहले ही हो गई थी। जिसने पति को देखा तक नहीं था। विवाह क्या होता है, जाना ही नहीं था।

धीरे-धीरे वह यौवनावस्था में पदार्पण कर रही थी। अपने शरीर में होने वाले परिवर्तनों को महसूस करने लगी थी। मन में उठने वाले काम – भाव उसे परेशान करने लगे थे। कीर्तन करते हुए वह अपने मन को कान्हा में रमाने का प्रयत्न करती। खुर्ली

आँखों से निहारती रहती। भोर के समय जब कुछ विधवाएँ यमुना के किनारे जाकर ध्यान लगाने के लिए सफेद बगुनों की तरह खड़ी होतीं तो वह भी उनका अनुकरण करते हुए आँखें मूँदकर ध्यान लगाने का प्रयास करती तो उसके हृदय में दुख की धारा बहने लगती। ध्यान तो लगता नहीं था पर वह सोच में पड़ जाती। क्यों, उसके साथ ऐसा क्यों, उन सब साथिनों के साथ ऐसा क्यों जो ऐसा नारकीय जीवन बिताने के लिए विवश हैं। ऐसा वह सोचती थी, सब नहीं। कुछ बड़े मनोयोग से ध्यान में लीन रहतीं। मंदिर में प्रसन्नता से भजन-कीर्तन करतीं। आश्रम में खुशी-खुशी एक-दूसरे के साथ समय बिताती हैं।

पर वह ऐसा नहीं कर पाती। दार्शनिक की तरह सोचती और चुपचाप अपने काम करती। समय से पहले ही वह प्रौढ़ हो गई थी। पर मन का बवंडर तो थमने का नाम ही नहीं लेता था। तब वह अठारह वर्ष की युवती थी।

रूखा-सूखा खाकर भी उसका बदन भरा हुआ और चेहरे पर कांति थी। उसके गायन में भी परिपक्वता आ गई थी। जिस आश्रम में काम के बदले रहने की जगह मिली हुई थी वहाँ की सभी विधवाएँ और अन्य लोग उसे पहचानने लगे थे।

कीर्तन करते हुए उसे कई बरस हो गए थे। इधर वह महसूस कर रही थी कि मंदिर के एक पुजारी की आँखें आते-जाते उसकी ओर उठ जाती हैं। जब भी वह आँखें खोलकर देखती उसके दिल की धड़कन तेज़ हो जाती। अब वह उस उम्र पर पहुँच गई थी जहाँ उसे अपनी स्थिति का ज्ञान हो गया था। सामाजिक वर्जनाओं और अपनी मर्यादा को भी समझने लगी थी। वह अपने मन को समझाती और सतर्क रहती। जब वह अपने केश रहित सिर को ढकती तो अपने चेहरे को भी छुपाने का प्रयास करती और साथ में मन में उमड़ती भावनाओं को भी। कितना कठिन होता है विवशता से साध्वी हो जाना। कुत्सित विचारों, भावनाओं को संयम की डोर से बाँधकर रखना। कई बार भागकर घर जाने के लिए उस का मन विह्वल हो उठता। पर कौन सा घर! जहाँ उसकी माँ ने धोखे से उसे इस नर्क में भेज दिया था। मेहनत करके पेट तो वह वहाँ भी भर सकती थी। तन पर सफेद कफ़न डाले मन को संयम में रखकर जी सकती थी। शेष भेड़िये तो हड़पने को हर जगह मुँह खोले मिल जाते हैं। यहाँ भी तो वह शिकार बनते बनते रह गयी। उस पुजारी के चंगुल से वह बच गई थी जिसने एक दिन मौका देखकर झपट्टा मारने का प्रयास किया था। यह तो उसकी किस्मत थी जो उस की कोठरी में साथ

रहने वाली अम्मा ने देखकर शोर मचा दिया था।

किसी के साथ ऐसा पहली बार तो हुआ नहीं था फिर भी दिदा का मन उस आश्रम से उचट गया। सुरक्षित रहने की गारंटी तो कहीं भी नहीं थी फिर भी वह दूसरे मंदिर में जाने लगी। कान्हा को अपना सब कुछ मानकर उनके चरणों में स्वयं को समर्पित कर दिया। कुछ दिन किराये की कोठरी में रही फिर उसी अम्मा के कहने पर वह एक दूसरे आश्रम में रहने लगी थी। कई वसंत, कई पतझड़, कई होली के त्योहार आए लेकिन दिदा ने पीछे मुड़कर नहीं देखा। चन्द्रा से वह कब सबकी दिदा बन गई उसे स्वयं भी याद नहीं।

दिदा की गोद में पता नहीं झरना कितनी देर आँसू बहाती रही। दिदा ने भी उसे रोने दिया। जब जी हल्का हो गया तो उठकर बैठ गई। उसे छोड़ने माँ जब वह वृंदावन आई थी तो वह बीस वर्ष की थी। कई दिन तक भटकती रही फिर मंदिर में दिदा से सामना हो गया। उसकी आँखों में झरना को स्नेह दिखा था, अपनापन महसूस किया था उसने। फिर भी माँ जब वापिस जाने लगी तो उसने गिड़गिड़ाकर कहा था, माँ मुझे अपने साथ वापिस ले जाओ। मुझे जीना है। मेरे साथ मेरा मन भी भटकता रहेगा, वापिस ले चलो न माँ। पर माँ का मन भला कहाँ पसीजा था। “तेरा घर, संसार अब यहीं है झरना। गरीब विधवा का घर, माता-पिता का घर नहीं होता, तुझे यहीं रहना है अब।” कहकर वह निर्मोही माँ लौट गई थी इस अनजान शहर, अनजान लोगों के बीच, बिना किसी ठौर ठिकाने के। दो दिन तक वह

भूखी प्यासी पड़ी रही थी। दिदा की नज़र उस पर पड़ी तो उसने हाथ पकड़ लिया। दिदा को बरसों पुराने बीते अपने दिन याद आ गए। उसका मन विद्रोही हो उठा। यह कैसा समाज है रे। अपने नियम जानता है बस। विधवा हो जाना क्या उसके हाथ में है। फिर यह नारकीय जीवन क्यों? भीख माँगने, बिना मन-श्रद्धा के भी मंदिर में भजन-कीर्तन करने की मजदूरी करने से क्या मोक्ष मिल जाएगा? बूढ़ी, बेसहारा औरतें कान्हा की नगरी में अपनी इच्छा से शेष जीवन बिताना चाहती हैं, वे आएँ लेकिन उसकी तरह, झरना की तरह क्यों?

झरना का विवाह बारह वर्ष की वय में एक बयालीस वर्ष के रोगी के साथ उसके बाबा ने पाँच हजार रुपया लेकर कर दिया था। विवाह क्या होता है वह थोड़ा-थोड़ा जानती थी। उसका गौना भी जल्दी हो गया था। पति बीमार होने के साथ-



साथ कामुक भी था। झरना ने तीन वर्ष तक वह नरक झेला। एक रात नींद में ही पति की आत्मा मुक्त हो गई और वह रह गई अकेली क्योंकि ससुराल के नाम पर उसका पति ही था। दूर की बूढ़ी बुआ थी वह भी तीर्थ पर गई हुई थी। कौन सम्भालता, माँ-बाबा आए और लेकर लौट गए। विवाह के जोड़े में विदा हुई थी, उसके बाद कभी मायके गई ही नहीं और अब विधवा के लिबास में लिपटी वापिस आ गई। पहाड़ की नाई जीवन और पाँच और भाई-बहनों के बीच आकर रहने लगी। पति के न होने का उसे कोई दुख नहीं था क्योंकि उसकी दी मानसिक और शारीरिक प्रताड़ना की स्मृतियों को वह क्योंकि अपने दिल में बसाये। ऐसा कुछ भी अच्छा नहीं था कि वह कुछ याद रखे सिवाय इसके कि दो जून की रोटी उसे मिल जाती थी। पति के नाम का सिंदूर उसकी माँग में था। बस, इतने भर का ही सुख। पर शेष जीवन में भी उसने सुख कहाँ पाया। सुख पाना इतना आसान भी तो नहीं था। वर्षा न हो तो तपती धरा का सीना फट ही जाता है। न बीज उगता है न फसल लहलहाती है पर धरा को फटे सीने में भी जल की दरकार रहती है। पानी बरस जाए तो दरारें भर जाती हैं और न हो तो बंजर हो जाती है और झरना को बंजर होना स्वीकार्य नहीं था।

उन्हीं दिनों चन्द्रधर अपने मामा के पास गाँव में आया था। मामा की उम्र हो चली थी। उनका कोई लड़कान हीन था। बड़ी-बेटियों का विवाह हो चुका था। दो छोटी अभी कुँआरी थीं। मामा का अकेले काम करना मुश्किल हो गया तो उसने चन्द्रधर को अपने पास बुला लिया। छोटा-सा गाँव, कोई भी नया व्यक्ति आए तो पता चल जाना स्वाभाविक है। फिर चन्द्रधर तो अपने स्वभाव के कारण कुछ ही दिनों में सबके बीच चर्चा का विषय बन गया था। दुकान और मामा के घर के बीच ही पड़ता था झरना का घर। पता नहीं किस बुरी घड़ी में पैबंद लगे झीने परदे से उसने झरना को देख लिया और फिर उसके बाद वह जब भी निकलता परदे के पीछे देखना कभी नहीं भूलता। कब, कैसे दिल में अंकुरित प्रेम के बीज पल्लवित हो गए उसे पता ही नहीं चला। यह एक तरफ़ा प्यार था। झरना तो जानती भी नहीं थी। हाँ छत से कभी आते-जाते दिख जाता था। उससे कोई चार-पाँच बरस ही बड़ा होगा।

तब भी होली का, रंगों का त्योहार था। अबीर, गुलाल की सुगंध कई दिन से वातावरण में सर्वत्र फैल रही थी। पर झरना के जीवन से यह रंग जा चुके थे। मन ललचाया भी पर उसके लिए यह सब वर्जित था। होली से एक दिन पहले जब दोल उत्सव

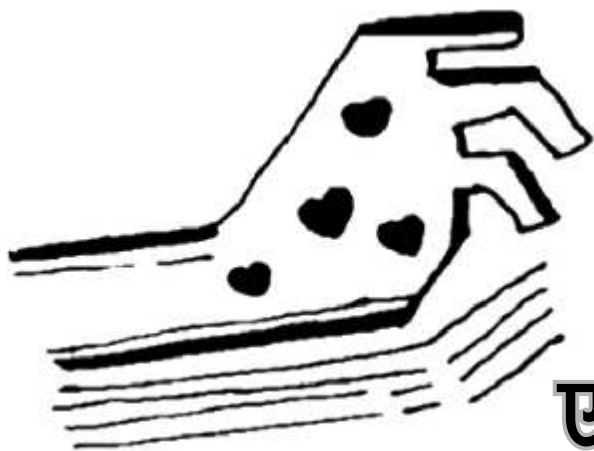
मनाया जा रहा था। गाँव के सभी लोग राधा कृष्ण के झूले के गिर्द चैतन्य महाप्रभु के भजन गाते हुए मग्न होकर नृत्य कर रहे थे और गुलाल लगा रहे थे। झरना घर की छत पर चली गई। उसका किशोर मन मचल रहा था। डबडबाई आँखों से वह आसमान की ओर देख रही थी तभी पीछे से किसी के हाथों का स्पर्श पाकर वह चौंक गई। जब तक वह कुछ समझ पाती गुलाल उसके चेहरे पर लग चुका था। “कृष्ण के रंग में रंग जाओ झरना। नीचे जाओ और सबके साथ रंगों से खेलो।” चन्द्रधर उससे कह रहा था। वह उसके रंग से बचने के लिए जैसे ही आगे हुई उसका पाँव फिसला और मुँडेर से नीचे गिरने को हुई, चन्द्रधर ने उसे थाम लिया और वह क्षण उसके जीवन का अनमोल क्षण बन गया। उसके तन के साथ अंतरात्मा भी भीग गई। कैसा क्षण था, कैसा आकर्षण। अनजान हाथों का सहारा उसे जीने के लिए बहुत कुछ दे गया।

यह वही क्षण था जब माँ ने उसे देख लिया। पता नहीं उसे कैसे पता चल गया था और फिर चार दिन के भीतर ही वृंदावन लेकर आ गई थी। चन्द्रधर ने माँ-बाबा को समझाने की बहुत कोशिश की थी लेकिन परम्पराओं से जकड़े उनके मन ने स्वीकृति नहीं दी थी।

उसने यह सब कुछ दिहा को बेझिझक बता दिया। यह भी कि वह चन्द्रधर से पेमक रनेल गीथी। प रव याच न्द्रधरने किशोरावस्था के उस प्रेम को याद रखा होगा। जिसने उसे जीने का रास्ता दिखाया था।

रात का दूसरा पहर बीत चुका था। आसमान में बादल छाने लगे थे। चाँद सरक रहा था पर सामने बादल आने से धरती पर अँधेरा छा गया था। वे दोनों अपनी-अपनी पीड़ा की पोटली समेटे अभी भी एक-दूसरे के दर्द को समझती हुई बैठी थी। उनका दोष क्या है? क्या यही कि वे विधवाएँ हैं और इसीलिए उनको समाज की दी हुई यातनाएँ सहनी हैं। दिहा ने तो जीवन जी लिया है पर झरना! वह क्यों इन यातनाओं को सहे। सब कुछ बदला है, बदल रहा है तो उनका जीवन क्यों नहीं? दिहा में जाने कहाँ से, कैसे जोश भर गया था। झरना का हाथ पकड़कर उठाते हुए बोली, “उठ झरना हमें स्वयं ही कुछ करना होगा। चन्द्रधर अब भी तुम्हारी प्रतीक्षा ज़रूर कर रहा होगा।” उनके उठते ही बादल छट गए थे और आसमान में चाँद मुस्कुराने लगा था।

सम्पर्क : ई-29, नेहरू ग्राउंड, फरीदाबाद 121001



डॉ. शील कौशिक

एक फैसला मेरे हाथ

इ

स बार भव्या का यद्यपि यह दूसरा प्रसव था, परंतु हर बार भयानक पीड़ा से तो गुजरना ही पड़ता है। इसकी बड़ी नंद और पतिदेव उसे तनिक देर भी बैठने नहीं दे रहे थे। उसके दोनों कंधे थामे वे उसे अस्पताल परिसर में चहल कदमी करने को कह रहे थे। भव्या दर्द से कराहते हुए भी उनका पूरा साथ दे रही थी। जब उसे लगा कि वह नीचे से गीली हो रही है, तो समझ गई, अब बेबी बाहर आने में देर नहीं है। उसकी ननद उसे पकड़ कर तुरंत डिलीवरी रूम की तरफ ले गई।

नर्स जिसका नाम प्रिया था, भव्या की पक्की सहेली थी। उसी ने कहा था-

‘सरकारी अस्पताल में डॉक्टर सत्या बहुत अच्छी लेडी डॉक्टर हैं। उनसे बढ़िया गायनेकोलॉजिस्ट पूरे शहर में नहीं है।’

इसलिए प्रिया के कहने पर भव्या ने अपनी डिलीवरी सरकारी अस्पताल में कार्यरत डॉक्टर सत्या से कराने का ही फैसला लिया था। प्रिया ने उसे डिलीवरी टेबल पर लिटा दिया और प्रसव कराने की तैयारियों में जुट गई।

सरकारी हस्पताल के लेबर रूम में डिलीवरी टेबल पर लेटी भव्या बस एक ही बात सोच रही थी...कि उसके पास सुंदर सलौना स्वस्थ बेटा है, हे भगवान! अब की बार बेटी हो जाए तो परिवार पूरा हो जाएगा। अंश को बहन मिल जाएगी। दोनों तरह के फूलों से घर की बगिया सुगंधित हो जाएगी। वह स्वयं पांच भाइयों की इकलौती बहन है। छोटी या बड़ी बहन न

होने के कारण, वह हमेशा उनके प्यार से वंचित रही है। उसे छोटी बच्चियों के लिए विभिन्न प्रकार की डिजाइनर ड्रेस बनाना रुचिकर लगता है। पड़ोस की दिव्या, आराध्या, मनी सब बच्चियों के वह बाल बनाती है। उसे बेटी पाने का कितना चाव है, बस अब अपनी सब अभिरुचियाँ वह बेटी पाकर पूरा करना चाहती है। अभिनव भी पूरी तरह उसकी इच्छा के साथ हैं। उन्होंने कभी विपरीत टिप्पणी नहीं की या उसे टोका बल्कि उसकी इच्छाओं को हमेशा पंख ही लगाए हैं। हां मजाक में कभी-कभी कह देते हैं,

“तुम्हारी सखी नर्स है, वह सब कुछ जानती है, लेकिन वह अपने प्रोफेशन को लेकर संजीदा है। गर्भ में लिंग के बारे में बताना, उसे गंभीर अपराध लगता है। फिर तुम्हारे चाहने से कुछ नहीं हो सकता। जैसा नियति को मंजूर होगा वैसा ही होगा। यह सब बातें गुणसूत्रों के मिलान पर निर्भर करती हैं।”

भव्या की नज़रों के सामने स्क्रीन बनी लेबर रूम की दीवार पर चलचित्र की तरह दृश्य उभर रहे थे-

‘उसे दोनों भाई-बहन कभी खेलते नज़र आते...कभी एक-दूसरे को राखी बाँधते-बँधाते...कभी रूठते-मटकते तो कभी परस्पर लड़ते-झगड़ते दिखाई पड़ रहे थे।’

भव्या के होठों पर सजीली मुस्कान तैर गई। यदि बेटा हुआ तो...

यह विचार आते ही चेहरे पर आई जुशी का भाव एकदम जायब हो गया और साथ ही दीवार पर उभरे मनोरम दृश्य भी। दो बेटों की माँ पज़ोस की चित्रा आंटी की दुर्दशा उसके नयनों में



ठहर गई। उसकी प्रसव पीड़ा मानो दुगुनी हो गई।

पास खड़ी प्रिया डॉक्टर संध्या का इंतजार कर रही थी। वह भव्या के सिर पर बार-बार हाथ फेर कर सांतवना दे रही थी- ‘बस कुछ ही देर की बात है, डॉक्टर संध्या आती ही होंगी।’

तभी भव्या ने देखा कि उसके साइड वाली टेबल पर एक और प्रसूता दर्द से चिल्ला रही थी। तनिक देर दर्द थमा तो भव्या ने उससे पूछा,

“क्या नाम है बहन तुम्हारा?”

“नुक्सा।”

“नुक्सा, ये कैसा नाम है?”

“वैसे मेरे माँ-बाप ने तो मेरा नाम मधु रखा था। मेरी माँ कहती है कि मेरी मिश्री जैसी मीठी आवाज़ है... जब मैं बोलती हूँ तो मानो शहद टपकता है, इसीलिए मेरा नाम मधु रखा गया था। बड़े लाड़-चाव से मेरे माँ-बाप ने ससुराल भेजा था। लेकिन करमों की गति कोई नहीं बाँच सकता। मेरे लगातार तीन लज़कियाँ पैदा होने पर सास ने कह दिया कि इसकी तो कोख में ही नुक्स है, तब से ससुराल में सब मुझे नुक्सा कहने लगे। मेरा असली नाम तो सब भूल ही गए। मैं भी अपना नाम भूल गई हूँ,

“कहते हुए दर्द और भय की लकीरें उसके चेहरे पर साफ़ पढ़ी जा सकती थी। लेकिन दूसरे ही पल वह संभल गई। उसकी आँखों में उम्मीद के दीये झिलमिलाने लगे और एक स्निग्ध मुस्कान उसके होठों पर आकर ठहर गई। बाद में तो जो होना है, सो होना है, फिलहाल वह सुखद भविष्य की कल्पना में खोए रहना चाहती है।

“ओह!”

भव्या के मुख से निकला। वह सोचने लगी-

‘नवरात्र के दिन चल रहे हैं, वैसे तो लोग इन दिनों कुंवारी कन्याओं को पूजते हैं... अनुष्ठान करते हैं। लेकिन इनके मन में कितनी नकारात्मक विचारों की खरपतवार भरी है।’

लेटी हुई भव्या की नज़र फिर से दीवार पर गई, तो कई चेहरे एक साथ उभरे। नुक्सा की सास हाथों से बाल खींचते हुए उसे गालियाँ सुना रही है-

“इस करमजली के हमारे घर में ऐसे पैर पड़े हैं... जबसे आई है, लड़कियों की लाईन लगा दी है... हमारी जुशियों को जैसे ग्रहण लग गया है।”

उधर ससुर के मुँह में नीम जैसी कज़्वाहट घुली है। वह ज़मीन पर थूककर गुस्से का इज़हार कर रहा है। पति का चेहरा जुस्से से तमतमाया है, वह पत्नी को ऐसे घूर रहा है जैसे उसे अभी कच्चा चबा जाएगा या मौज़ा मिलते ही उसका गला दबा देगा। भव्या ने घबराकर एक बार फिर नुक्सा की ओर देखा, वह आश्वस्त का दामन थामे थी।

तभी नुक्सा के तेज़ दर्द उठा और नर्स दौड़कर डॉक्टर को बुलाने गई। डॉ. एक अन्य गंभीर स्थिति वाले मरीज़ को लेकर आप्रेशन थियेटर में व्यस्त थी।

प्रिया ने अन्य कोई उपाय न देख कर, स्वयं इस केस को सँभाला।

“इसके तो चाँद जैसी सुंदर बेटि हुई है”, प्रिया ने कहा।

फुसफुसाहट सुनकर वज्रपात हुआ नुक्सा पर। सारे सपने धराशायी हो गए, उसे अपना काल नजर आने लगा। नीचे से खून का फव्वारा छूटा और वह बेहोश हो गई। बेहोशी में उसके होठों पर एक ही वाक्य था,

“अब मैं नहीं बचूंगी।”

उसकी हालत गंभीर हो गई थी। तब तक डॉ. संध्या आ पहुंची थी। बच्चे को बिना देखे नर्स को सौंप कर, डॉ. संध्या ने अन्य स्टाफ को उसे तुरंत आई.सी.यू. में ले जाने को कहा।

इस बार दर्द की लहर आने पर भव्या ने पास खड़ी नर्स का हाथ अपने हाथ में जकड़ कर, आँखों के इशारे से डॉक्टर संध्या के बारे में पूछा। उत्तर के स्थान पर प्रिया चुप थी। डॉ. संध्या नुक्सा की जान बचाने का प्रयत्न कर रही थी। दर्द ने कुछ राहत के पल दिए, तो भव्या की आँखें फिर से दीवार पर चिपक गईं। कई वीभत्स चेहरे एक साथ उभरे... नुक्सा की सास दोनों हाथों से उसके बाल खींचते हुए उसे भद्दी गालियाँ सुना रही है, “इस रांड से तो छुटकारा पाना ही पड़ेगा... बेटे का दूसरा ब्याह करना पड़ेगा... कुछ देर साँस पर काबू पाकर फिर रोने लगी”, कितनी

आस थी अब की.... हमारी खुशियों को तो जैसे सदा के लिए ग्रहण लग गया है। ससुर माथा पकड़े हुए जमीन में नजर गड़ा बैठा है, जैसे बेहद शर्मिंदगी का काम हो गया हो। पति बेचैनी और गुस्से में तेज-तेज चहलकदमी कर रहा है।

भव्या घबरा गई, हे ईश्वर! कितनी जहरीली सोच है इन लोगों की।

उधर भव्या को भी जल्दी-जल्दी दर्द उठने लगे। प्रिया ने नुक्सा की बच्ची को पालने में लिटाकर भव्या को संभाला।

‘बेटा हुआ है’, झिलमिलाती खुशी का इजहार करते हुए प्रिया ने सूचना दी।

भव्या का चेहरा सपाट था। उस पर न खुशी के भाव आए और न ही दुख के।

वह सोचने लगी, “यदि मेरे बेटे और नुक्सा को बेटा हो जाता, तो हम दोनों का घर खुशियों से भर जाता। कुदरत का ये कैसा न्याय है? मुझे बेटे पाने की तमन्ना थी, पर हो गया बेटा और उधर उसे बेटे की चाहत थी, हो गई बेटे। नुक्सा का तो जीवन मरण का सवाल था... समय की धोबी पछाड़ ने सब चित्त करके रख दिया।”

आवेश की एक लहर उसके मन में दौड़ गई उसी क्षण उसने कहा,

“दिन और रात को भी बदलना पड़ता है, नुक्सा के दुखों का भी अंत होगा, अवश्य ही होगा। भगवान ने तो अपना न्याय सुना दिया है, पर एक न्याय तो मैं भी कर सकती हूँ।”

उसने प्रिया को तुरंत अपने पास बुलाकर कान में कुछ कहा।

प्रिया यह सुन कर भौचक्की रह गई। घबराहट के मारे चेहरे पर पसीने की बूंदें छलक आईं, “मुझसे नहीं होगा यह काम। मेरा इमान, पेशा, मेरा जमीर इस कार्य की इजाज़त नहीं देता। फिर यहां तो यह रोज ही होता है, किसी के यहाँ लज़्का तो किसी के यहाँ लज़्की, हम किस-किस का घर खुशियों से भर सकते हैं।”

भव्या ने दोनों हाथ जोड़ते हुए धीमी आवाज में प्रिया को फिर कुछ समझाया और नुक्सा के जीवन का वास्ता दिया।

“भव्या तुम भावुकता में ऐसा कह रही हो, यह संभव नहीं है। नियति को अपने हाथ में लेने चली हो। दुख-सुख की माला तो कुदरत पिरोती हैं, उसे मात देकर तुम नुक्सा के लिए सुख की माला पिरोने चली हो... नहीं, यह मुझसे नहीं हो सकेगा।”

“पर हर बार तुम्हारी सखी भव्या जैसी, उदारवादी महिला भी तो नहीं मिलती है न और न ही मिलेगी।”

प्रिया ने देखा भव्या की आंखों में करुण निवेदन था।

“यह तुमने कैसी अबूझ पहेली में उलझा दिया है मुझे, भव्या।”

प्रिया इंकार न कर सकी। नवरात्र के इन दिनों में मानों चारों ओर शक्ति की अमृत वर्षा हो रही थी... एक ऊर्जा का सैलाब उसके मन में बहने लगा... कमरा एकदम रोशनी से जगमगा उठा। असीम शांति से भरी भव्या को दीवार के दृश्यों में अब उसके मन चाहे रंग नज़र आ रहे थे।

प्रिया ने नुक्सा को बेटे होने की सूचना बाहर बैठे नुक्सा के परिजनों को दी। वे खुशी से पागल हो उठे। कहाँ है हमारी मधु बहू और बेटा।

होश में आने पर नुक्सा ने स्वयं को अपनी सास, ससुर और पति से घिरा पाया। सास उसकी बलैयां ले रही थी। वह कपड़े में लिपटे बच्चे को अपने सीने से चिपकाए हुए थी। ससुर के चेहरे पर असीम संतोष की दमक थी। पति तो उसके पायताने बैठा बस प्यार से उसे निहारे जा रहा था।

नुक्सा विस्मित-सी इधर-उधर देख रही थी। वह इस चमत्कार पर विश्वास नहीं कर पा रही थी। नर्स के सामने पड़ते ही उसने उसके हाथों को थाम कर उसकी आँखों में झांका। वह मुस्कुराते हुए बोली,

“हाँ-हाँ, तुम्हें लज़्का ही हुआ है।”

वह मन ही मन सोचने लगी-

‘तो मैंने जो अर्द्धचेतना में सुना था, वह...क्या झूठ था...’

उसने ऊपर की ओर देखा और अदृश्य शक्ति के लिए दोनों हाथ जोड़ दिए।

उधर अभिनव और भव्या की ननद सुंदर-सी बिटिया को पाकर फूले नहीं समा रहे थे।

भव्या और प्रिया के बीच यह राज सदा के लिए दज़न हो चुका था।

सम्पर्क : मेजर हॉउस-17, हुड्डा, सेक्टर- 20, पार्ट-1
सिरसा-125056; मोबाइल : 9416847107





डॉ. इन्दु गुप्ता



अह! खुशी

ह

र बार की तरह भोर होते ही नन्दिता और राघवजी ठाकुर जी के दर्शन को वृन्दावन के लिए निकल पड़े थे। पहले वे वृन्दावन के इस्कॉन मन्दिर में रुके, वहां कृष्ण-भक्त एकाग्रचित्त हो राधा-कृष्ण की प्रभात-आरती कर रहे थे। उन्हें अपने बीच आया देख एक भक्त ने आरती के निमित्त प्रज्वलित एक प्रदीप थमाकर उन दोनों को भी उस अलौकिक कार्यकलाप में सम्मिलित कर लिया। एक ओर राधा-कृष्ण का फूलों से अद्वितीय मनमोहक शृंगार किया हुआ था तो दूसरी जगह राधा-कृष्ण और सखियों को सुन्दर वस्त्राभूषणों से सजाया हुआ था। वहां सभी अंग्रेज थे—गोरे चिट्टे, गुलाबी होंठ, झिलमिल आंखें... लेकिन सब ने भारतीय देसी पहनावा धोती-कुर्ते पहन रखे थे। घुटे सिरों पर चोटी रखी हुई थी। दाएं हाथ में गोमुखी के भीतर फिरती माला के मनकों पर वे दीक्षित कृष्ण-भक्त अविरल जाप कर रहे थे। कहीं आडम्बर नहीं, कोई ढोंग नहीं। मात्र एक आस्था, दिव्य प्रेम की पवित्र अनुभूति और उसी की सहज-सरल अभिव्यक्ति थी। आरती के बाद वहीं मन्दिर के हॉल में पखावज, हारमोनियम बजाकर भक्त-मण्डली 'हरे कृष्णा हरे कृष्णा कृष्णा कृष्णा हरे-हरे' का जाप करने लगी...बिन सम्पुट सोलह अक्षरीय सीधा-सरल मंत्र। अंग-अंग में प्रवाहित होती, आप्लावित भक्ति एवं कृष्ण प्रेमासक्ति की सरल, सहज, मधुर अभिव्यक्ति...भाव-निधि का निर्मल, निश्छल, निःस्पृह प्रवाह... शब्दों के भ्रमजाल, घुमावदार गूँजगहन-अर्थी मंत्र-तंत्र की जटिलता व पेचीदगियों

को कहीं पीछे छोड़कर प्रेम व भक्ति की यह अप्रतिम सादगी पंचेन्द्रियों से बहती हुई उनकी काया, मस्तिष्क फिर पूर्ण अस्तित्व पर काबिज हो गई। हर जगह वही धरती, आकाश, पानी और हवा है फिर यहां इतना प्रेम कैसे बिखरा हुआ है...कतरा-कतरा प्रेम में सराबोर है। कुछ है, जो मन यहां से जाना ही नहीं चाहता। कैसा जादू, आकर्षण-पाश है? यह सोलह अक्षरीय मन्त्र है या स्वयं साक्षात् कृष्ण रोम-रोम में धड़क रहे हैं? वापिस गाड़ी में बैठते हुए भाव-विभोर-विस्मित नन्दिता राघव से पूछने लगी...

“तो इसमें हैरान होने जैसा क्या है?, कृष्ण का मतलब ‘जो सबसे अधिक आकर्षक है।’ कृष्ण निराकार केन्द्र है, जो सर्वव्यापी है। गुरुत्वाकर्षण से कई गुणा अधिक और तेज़ है यह शक्ति, जो सब कुछ अपनी ओर खींचती है। जानती हो, कृष्ण कण-कण में सोए हैं... बीज रूप में हमारे भीतर हैं। अपनी अनुभूतियों के अन्तर्गत जब हम उसे पुकारते हैं तो ईश्वर जागते हैं, तब हम इस दिव्य व गहन यथार्थ का अनुभव कर पाते हैं। अक्सर हम कृष्ण की छलना में आकर आकर्षण के इस मूल-सत्त्व को नहीं समझ पाते और बाहरी खोखले आवरण में ही उलझे रहते हैं। लेकिन राधा कृष्ण के इस छल में नहीं आई। राधा की तो पूरी सृष्टि ही कृष्णमय थी, उसकी आत्मा, उसका स्व साक्षात् कृष्ण था। कहते हैं, कृष्ण की सोलह हज़ार एक सौ आठ रानियां थी, रूक्मिणी उनकी पटरानी थी। राधा उम्र में उनसे कहीं बड़ी थीं, कृष्ण की ब्याहता भी नहीं थी...फिर भी दोनों को साथ-साथ पूजा जाता है। यहां तक कि राधे का नाम

जपने से कृष्ण को जल्दी प्राप्त किया जा सकता है। बांके-बिहारीजी के मन्दिर में भी तो तुम सदा ऐसा ही अलौकिक अनुभव करती हो। यों उनसे नाराज़ रहती हो, जब मेरे आग्रह या अपने मन से यहां आ जाती हो तो बस यहीं की होकर रह जाती हो। क्या है तुम्हें ?”

हाँ, सच में, वह खुद नहीं जानती कि उसे यहां आकर क्या हो जाता है ? और आज भी वही हुआ...

बिहारीजी के मन्दिर में पहुंचते ही राघवजी को भोग-प्रसाद लेता छोड़, नन्दिता सब कुछ भूलकर सारी भीड़ को चीरती हुई सबसे आगे जा खड़ी हुई थी, उनके नयनों में झांककर अपनी बात कहने... कान्हा को अपलक देखती उसकी आंखों से बहती अवरिल अश्रुधारा... मानो पल-पल पूछ रही थी, ‘ओ मेरे कान्हा... कब आओगे मेरे आंचल में...’ शायद उसके दर्द की पराकाष्ठा ही रही होगी कि मूर्त बने बिहारी जी एक पल को सामने आते और अढ़ाई घड़ी को पर्दे के पीछे ओझल हो जाते... अचानक तभी कुछ हुआ, शायद पुजारीजी कुछ पल को पर्दा करना भूल गए और बिहारीजी का भव्य-स्वरूप अपनी पूर्ण भाव-भंगिमाओं और अप्रतिम छटा के साथ उसकी आंखों से दिल में उतर गया... श्याम मुख पर मनमोहिनी मुस्कान, शरारती आंखें... ‘ओह कान्हा तू मेरा ही तो है, हर-सू मुझ में समाया... फिर तभी पुजारीजी ने ठाकुरजी को अर्पित दो-एक तुलसीदल की मालाएं भक्तजनों की ओर उछालीं तो उनमें से एक उसके हाथ में आ लिपटी ...और उससे कुछ तुलसी पत्र प्रसाद-स्वरूप पाने की लालसा में आस-पास के श्रद्धालुओं ने उसके सम्मुख अपनी हथेलियां पसार दीं। वह चकित-सी शिकवा-शिकायत भूलकर यंत्रवत सबको प्रसाद वितरित करने लगी। उनकी आंखों में तुष्टि का भाव देख उसके आंसू स्वतः ही सूख गए। वह समझती थी, अपने कान्हा का इशारा... उसे अपने सेवा-कार्य को पूरा करना है, जो उसने दिया है... उसे ज़रूरतमंदों में बांटना है। यह सब वह अब भी करती तो आ रही है, परन्तु उसे अपने कान्हा से एक शिकायत रहती है कि उसकी कोख में वे बाल-कृष्ण स्वरूप में क्यों नहीं आते ?

वहां से निकल गुरुजी के आश्रम में पहुंचकर उन दोनों ने उनसे शुभाशीष प्राप्त किया और उनके परम-सान्निध्य में कुछ

समय व्यतीत करके दोपहर में विधवा साध्वियों को वहां हलवाई से बनवाया भोजन और फल वितरित किए। नीली-काली बारीक कन्नी की चिथड़ें सरीखी सफेद मटमैली घिसी-पिटी धोतियों में लिपटी, केशमुंडी मरियल-सी औरतें... मानो कई जन्म से भूखी हों। जानती हैं वह, कि उनमें से लगभग सभी के भरे-पूरे घर-परिवार बेटे-पोते होंगे, परन्तु किसी के पास भी उनके लिए दिल में, घर में कोई स्थान नहीं... यह निवासित, निराश्रित माताएं मात्र-एक मुट्ठी चावल की चाह में पूरा-पूरा दिन भजन करने, अपनी हर इच्छा का दमन करके, तरह-तरह का शोषण सहने को मजबूर... फिर भी हम सदा संतान की कामना करते हैं, उसके बिना स्वयं को अधूरा महसूसते हैं... ओह! कैसी विडम्बना है, यह, जीवन का यह कैसा रंग-रूप है ? इन विधवाओं को खिलाकर, उनके चेहरों पर कुछ पल को

तृप्ति का भाव देखकर, उनके सान्निध्य में कुछ समय बिताकर नन्दिता को... एक विचित्र सुख की अनुभूति होती है। ठाकुरजी को छप्पन-भोग लगाने से भी अधिक आनन्द का अनुभव करते, वे कुछ समय तक वंशीवट, यमुना-तट, कुझगलियों में बिखरे मन्दिरों में घूमते-विचरते रहे। थोड़े समय में ही जाने क्या-क्या समेट लिया था नन्दिता ने, अपने भीतर...। गाज़ी में बैठी वह जान-समझ कर निष्कर्ष निकाल पा रही थी कि प्रेम की अनुभूति के लिए कुछ पाने की चाह से अधिक पूर्ण समर्पण ज़रूरी है।

वे वापिस फरीदाबाद पलटने को हुए तो सुबह जो सूरज पीली-नारंगी किरणों का रूपहला-सुनहरा जाल बुन रहा था, अब मंदिर-मन्थर इठलाती यमुना के श्यामल वक्षस्थल को दहकाता हुआ, उसी में डूब रहा था। इधर सूरज ने गोता लगाया, उधर आसमान हुमक कर गहरा गया। उसकी निगाह स्लेटी-सांवले आसमान की तरफ उठी, “ज़रा आसमान को देखिये तो, कितना बेचैन, चंचल-सा दिख रहा है और ये बादलों के सिलसिले-कैसे उचके पड़ रहे हैं,, मानो किसी रंगरेज़ ने स्लेटी-भूरे-काले रंग में रंग कर ओज़नियां फैला दी हों और वे एक के पीछे एक घूम-घूम कर, नीचे आकर धरा को ढंकने को आतुर हो रही हैं। कितनी गतिशीलता, कितना ज़ोर, कितनी परेशानी है दोनों में... !” और सच में ही कुछ देर बाद कोहरे की सघनता नीचे उतरकर हल्की नन्हीं-बूंदों में झरने लगी। बज़्ती



अदृश्यता, ठण्ड और मौसम का बदलता रंग भांपकर राघव ने नन्दिता से कहा, “चलो नन्दू आज यहीं गुरुजी के पास रुक जाते हैं, एक दिन और ठाकुरजी के श्रीचरणों में... ?”



चोटें लगी थीं, परन्तु वह लगातार विलाप कर रही थी, “हे ठाकुरजी मेरे इनको बचा लो... कोई मदद करो।” एक, दो और गाड़ियों को रोककर उतरे कुछ अन्य लोग भी वहां जुट चुके थे। सबने बहुत यत्न कर पीछे के दरवाजे खोलकर, वहां से एक अधेड़वय स्त्री-पुरूष और एक डेढ़-दो वर्ष की बच्ची को बाहर निकाला। इस प्रयास में महिलाओं के दो हेंडबैग, ठाकुरजी की कुछ नर्तकी-नर्तकी पोशाकें, शृंगार-सामग्री आदि भी कार से बाहर आ गिरी... जिसे नन्दिता ने समेटकर स्त्री को दे दिया। छोटी-बच्ची बिल्कुल चुप थी, शायद जो हुआ उसे समझ पाने में असमर्थ थी। पीछे बैठे पति-पत्नी और छोटी-बच्ची को अधिक चोटें नहीं लगी थीं, फिर भी वह स्त्री कभी कराहने लगती तो कभी चिल्लाते, “हाय रे यह क्या हो गया ? कोई म्हारा बेटा को बचा लेओ रे। अरी मीणू तू ठीक है...अरे म्हारा नरेस... ?” जिसे सुनकर शायद दहशत में गूंगा हुआ उसका पति भी लोगों से सहायता की विनती करने लगा था। जयपुर के मूल-वासी, आजीविका-व्यापार हेतु बल्लबगज़ में आ बसा... पांच जन का यह मारवाड़ी मोदी परिवार बिहारीजी के दर्शन करके आ रहा था, जब घने कोहरे के कारण यह दुर्घटना हुई। पुलिस-केस जानकर हर कोई उन्हें हाथ लगाने से बच रहा था।

ले आए..., उन्हें देख अन्य लोग, शेष परिवार को वहां से निकलने में सहायता करने लगे, कि तभी दो गाज़ियों में पुलिस वहां आ पहुंची। ऐम्बुलेंस आने में देर होती देख पुलिस इंस्पेक्टर ने राघव व नन्दिता से अपने और उनके फोन नं. का आदान-प्रदान करके, नरेश को उनकी गाज़ी में लिटाकर तुरन्त डॉक्टरों सहायता हेतु ले जाने की अनुमति दे दी। उन्होंने नरेश की पत्नी मीनू और बेटी अनन्या को भी साथ ले लिया था। राघव घने कोहरे को मात देकर, सधे हाथों व सुलझे दिमाग से गाज़ी चलाते हुए उन्हें एक नर्सिंग होम तो ले गए परन्तु वहां के डॉक्टर साहिबान ने मीनू और नरेश को प्राथमिक उपचार देकर नरेश की नाजुक हालत देखते हुए वहां की ऐम्बुलेंस में आवश्यक प्राथमिक सहायता व नर्स इत्यादि के साथ उन्हें अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, दिल्ली के लिए रवाना कर दिया तथा राघव के कहने पर उन्होंने वहां अस्पताल में आपातकालीन मामला भेजने की पूर्व सूचना भी प्रेषित कर दी। पुलिस तथा नरेश के माता-पिता को फोन पर इस बारे सूचित कर नन्दिता और राघव भी ऐम्बुलेंस के साथ-साथ चल दिए। अपनी संस्था के कार्य के कारण नन्दिता और राघव का वहां अक्सर आना-जाना होता था, सो उन्होंने भी रास्ते से ही फोन पर पहचान के डॉक्टरों को इस आपातकालीन-स्थिति के बारे सूचित कर दिया था। वहां पहुंचते ही नरेश को तुरन्त आई.सी.यू. में ले जाया गया और राघव और नन्दिता मीनू के साथ अन्य औपचारिकताएं पूरी करवाते रहे। रात के ग्यारह बजे तक नरेश के माता-पिता व अन्य रिश्तेदार भी वहां पहुंच गए थे। पिछली सीट पर होने के कारण नरेश के माता-पिता को हल्की-खरोंचे या गुम चोटें ही आई थी, बस नरेश की हालत अच्छी नहीं थी... परन्तु उन्होंने राघव और नन्दिता का आभार प्रकट करते हुए उन्हें घर जाने को कहा।

दोनों अपना पता और सेलफोन नं. देकर नरेश के लिए प्रार्थनाक रतेहुए भीम नसेधरल गैटआ गए। अगले दिन रक्तदान व अंगदान जागरूकता शिविर आयोजन के दौरान नन्दिता नरेश का हाल जानने के लिए अस्पताल में मीनू तथा डॉ. आदि से लगातार फोन करती रही। उसके अगले दिन वह उनसे मिलने एम्स भी आई। नरेश के मस्तिष्क, सिर-माथे पर चोटें बहुत गहरी थीं तथा उसे अब तक एक बार भी होश नहीं आया था। चार दिन उसी स्थिति में रहने के बाद नरेश मस्तिष्क-मृत हो गया। खबर मिलते ही नन्दिता राघव के साथ अस्पताल पहुंची। पूरे परिवार, विशेषतः मीनू का रो-रो कर बुरा हाल था। वह अपनी बच्ची को सीने से लगाए बस रोए जा रही थी। “हे ठाकुरजी यह तो बहुत अच्छा माणस था, इतने अच्छे आदमी के साथ ऐसा कैसे... ?” अपने अट्टाईस बरस के जवान बेटे को

खो देने के गम से पागल हुए उसके सास-ससुर अपना दुख पीकर दोनों के सिर-माथे पर हाथ फेरकर उसे ढाढस बंधा रहे थे। जाने वाला जा चुका था, पर नन्दिता जानती थी कि वह जाने के बाद भी अपनी अच्छाई बांट सकता है... कई जरूरतमंदों को जीवन दे सकता है। नन्दिता व राघव ने अपनी संस्था के लोगों तथा एम्स के समन्वयक राजीव मेखुरी के साथ मिलकर उन्हें अंगदान के लिए बहुत प्रेरित किया, अनेक बार समझाया... और आखिर में नन्दिता और राघव के मानवता व समाज के लिए सेवा व समर्पण-भाव से प्रेरित होकर अपनी रुज़िवादी सोच को दरकिनार कर नरेश के माता-पिता नरेश के अंगदान हेतु राजी हो गए। एम्स की अंगदान समन्वय-टीम को सूचना देकर नरेश को एम्स ट्यूमा सेंटर में भेज दिया गया। यहां डॉक्टरों की टीम द्वारा पूर्णतया जांच करके उसे आधिकारिक रूप से मस्तिष्क-मृत घोषित किया गया, इसके बाद नरेश के अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग-हृदय, लीवर, किडनी और कार्निया दान कर दिये गए। नन्दिता की प्रेरणा तथा नरेश के परिजनों के हौसले से नरेश के इस महादान यानि अंगदान से पांच लोगों को नवजीवन मिला। नरेश के जरूरी अंग सही समय पर विभिन्न अस्पतालों में अंग-प्रत्यारोपण हेतु प्रतीक्षा कर रहे रोगियों हेतु पहुंचा दिए गए। दिल्ली पुलिस द्वारा एम्स व मैक्स शालीमार बाग, मैक्स साकेत, मैक्स पटपज़ांज... के बीच तीन ग्रीन-कॉरीडोर बनाकर मस्तिष्क-मृत नरेश की एक किडनी मैक्स शालीमार बाग, दूसरी किडनी मैक्स पटपज़ांज और आंखों के



दोनों कारिनिया आर. पी. केन्द्र में संरक्षित करने के लिए भेज दिए गए। लिवर को वसन्तकुंज स्थित इंस्टीट्यूट ऑफ लिवर एंड बायलरी साइंस में भेजा गया। मैक्स अस्पताल के यूरोलॉजिस्ट डॉ. वाहिद जमाल के नेतृत्व में किडनी की प्रतीक्षा कर रहे, एक मरीज को एक किडनी प्रत्यारोपण किया गया। एम्स अस्पताल के कार्डियोलॉजिस्ट द्वारा मृतक का दिल कार्डियोमायोपैथी के शिकार व काफी समय से हृदय-दान की प्रतीक्षा में जी रहे मरीज को प्रत्यारोपित किया गया। नन्दिता, डॉक्टर व सभी मरीज और उनके परिजन इस अनजान महादानी परिवार व मृतक के कृतज्ञ हो रहे थे,

परन्तु नरेश के चले जाने से मीनू और उसकी नन्ही-बेटी अनन्या का जीवन अंधकारमय हो गया था। जिसमें खुशी लाने के लिए नरेश के माता-पिता और नन्दिता जीने हेतु उसका हौसला बजाने का पल-पल भरसक प्रयास कर रहे थे। नन्दिता और मीनू में अच्छी मित्रता हो गई थी। उसी के प्रोत्साहित करने पर मीनू घर के बाहर निकलकर अपने ससुर तथा दिवंगत नरेश के व्यापार के काम-काज में हाथ बंटाने लगी थी। घर में सास व अनन्या के साथ वह खुश रहने का पूरा जतन करती। धीरे-धीरे समय बीत रहा था और मीनू ने अपने इस जीवन से काफी हद तक समझौता भी कर लिया था, परन्तु नरेश के माता-पिता से अपनी छब्बीस-सत्ताईस बरस की बहू-बेटी की आंखों में झलकता सूनापन छिप न पाता। वे इस कमी को महसूसते, अक्सर नन्दिता से भी चर्चा करते “नन्दिता जी मीनू का अभी पूरा जीवन उसके सामने है। हमसे उसका वैधव्य-कष्ट देखा नहीं जाता, हम क्या करें...?” सुनकर हर बार नन्दिता सम्भव उपाय बताती तो...



‘परन्तु हमारा समाज, उसके नियम, परम्पराएं व मान्यताएं...?’ कह-सोचकर, वे मीनू व अनन्या के लिए कुछ बहुत अच्छा करने की चाह रखकर भी अक्सर चुप कर जाते थे या फिर वे भीतर ही भीतर पुरातन सामाजिक-मान्यताओं से उबरने और इस परिवर्तन हेतु धीरे-धीरे अपने को तैयार कर रहे थे, नन्दिता नहीं जानती थी। नरेश के पिता सुरेश मोदी सामाजिक व जन-कल्याण कार्यो हेतु नन्दिता व राघव के साथ सक्रियता से जुड़ गए थे। इस तरह लगभग डेढ़ वर्ष गुजर गया था।

उसी दिन नन्दिता और राघव का विवाहसमारोह सम्मिलित होने जा रहे थे, वह शादी मीनू की थी! नरेश के माता-पिता ने नन्दिता और राघव की राय मानकर तथा मीनू के माता-पिता को भी विश्वास में लेकर एक अच्छे संभ्रात परिवार के गेयल डूकेर राजशेखरसे उ सकाई रश्ताक री दयाथ ।। हालांकि इस निर्णय को लेने में उन्हें लगभग डेढ़ वर्ष लग गया था, परन्तु ‘मारवाड़ी समाज में यह अनोखी घटना थी...’ जिसका कहीं दबी जुबान में विरोध तो कहीं मुक्त-कंठ से स्वागत किया गया, परन्तु समाज में सकारात्मक परिवर्तन के लिए और कुछ अच्छा करने के लिए किसी न किसी को तो एक साहसिक कदम उठाना ही पड़ता है, एक पहल तो करनी ही होगी... ‘नन्दिता के निर्मल सान्निध्य में नरेश के माता-पिता यह तथ्य, यह यथार्थ जान-समझ चुके थे। अगर उनका पुत्र मरने के बाद भी अपने अंगों के दान के द्वारा पांच जन के जीवन में उजाला कर सकता है तो, वे भी अपनी मीनू को उसके हिस्से की खुशी देने का निमित्त बन सकते हैं और यही सोचकर... उन्होंने मीनू के माता-पिता बनकर पूरी रीति-रिवाज के साथ राजशेखर से उ सकाई रश्ताक री दयाथ ।,अ पनेन रेशकी ए कमात्र निशानी अनन्या को उन्होंने जिद्द करके यह कहते हुए अपने पास ही रख लिया कि अनन्या तो उनके घर की रौनक है, उसके दादा-दादी उसके बिना कैसे रहेंगे ?

राजशेखर व मीनू जब चाहे अनन्या से मिलने उनके यहां आ जाते हैं। मीनू के माता-पिता और अब तो सारा मारवाड़ी-समाज भी नरेश और उसके माता-पिता की, उनकी इस अनूठी पहल के लिए, खूब श्लाघा करते हैं। नन्दिता और राघव भी स्तब्धता-भरी खुशी महसूसते हुए... मोदी परिवार का उदाहरण देकर, सबको बताते हैं... कि खुशियां बांटना ज़रा-भी मुश्किल नहीं... बस ज़रूरत है, तो एक सकारात्मक सोच की... संवेदनशीलता की... सुखद परिवर्तन हेतु एक पहल करने की।

सम्पर्क : 348/14, फरीदाबाद-121007

मोबाइल : 9871084402



कमल कपूर

अस्तित्व : एक किरण

ज

ब कार्यालय से बाहर निकली संजना तो आकाश सांवली घटाओं से अटा हुआ था, जो किसी भी क्षण बरस सकती थीं और अभी दस कदम ही बढ़ाए थे उसने कि बूँदा-बांदी शुरू हो गई, जो घर पहुँचने तक धारसार बारिश में बदल गई। बरामदे में खड़ी खाट पर भीगा दुपट्टा फैलाते हुए सहसा उसकी दृष्टि आँगन में खड़े वृद्ध-समृद्ध नीम-वृक्ष पर टिक गई। उसके चटक हरे पत्तों से छनकर गिरती मेह-बूँदें उसे उन आँसुओं की लग रही थीं, जो पापा जी ने इसकी छाँव में ही बैठ कर बहाए थे। यादों की एक बदरिया उमड़ी, जो मन-नयन भिगो गई और गहरी टीस जगा गई। भीतर आकर कपड़े बदल कर चाय का प्याला थामे वह पाँव पसार कर पलंग पर बैठी तो खिड़की के पारदर्शी शीशे के पार खड़े नीम ने फिर नज़रों को बांध लिया और बरसों से इस घर के हर सुख-दुःख के गवाह रहे नीम की शाखाओं पर उसका मन कटी पतंग सा अटक गया और इसकी उलझी डोर से लिपट पीछे की ओर खिंचता चला गया।

.....इसकी सुहावनी छाँव में बैठ माँ गृहस्थी के कितने ही काम निपटातीं, जैसे ...गेहूँ चुनना, तरकारी काटना, सिलाई-कढ़ाई-बुनाई करना आदि। पापा जी को भी पंखे-कूलर की हवा नहीं सुहाती थी। वह इसकी ठंडी छँया में बैठकर ही चाय पीते या पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ते। वह खुद भी सहेलियों को इकट्ठा कर यहाँ गुड़िया का ब्याह रचाती और फ्रॉक का घेरा फैला....गोल-गोल रानी, बोल मेरी मछली कितना-कितना पानी खेलती और किरण जीजी? उन्होंने तो एक कविता ही लिख डाली थी इस पर....“आँगन में खड़ा यह नीम-वृक्ष/

समृद्धि के दंभ से फूला जो/जिसकी मोटी सी शाखा पर/रसरी पटरी का झूला वो।” जीजी को झूला झूलना बहुत पसंद था इसीलिये पापाजी सावन की आहट सुनते ही सुंदर सा झूला डलवा देते और जीजी सखियों के साथ पींगें चढ़ाते हुए मीठे स्वर में गातीं ‘पक गई नीम की निम्बोरी, सावन जल्दी अइयो रे/ बहना दूर मत जइयो, बाबा नहीं बुलावेंगे।’ पापाजी उन्हें मीठी फटकार लगाते, “काहे ना बुलावेंगे बाबा? अरे खुद तेरे सासरे जाके पलकों पे बैठा लिवाके लावेंगे अपनी लाडो को।”

माँइ रीकतीं, ‘लिवाकेत ते बल विंगेन। ज बस। सरे जावेगी लाडो। कोई काम-धाम सीखेगी तभी तो ब्याह होगा न?’

माँ को सदा जीजी से शिकायत रहती कि वह या तो किताबों में घुसी रहती हैं या झूला झूलती रहती हैं। माँ को तो हर किसी से शिकायत थी... पापाजी से शिकायत कि उनका दुलार बेटियों को बिगाड़ रहा है, संजना से शिकायत कि इत्ती बड़ी हो कर भी गुड्डे-गुड़ियों से खेलती है और सबसे बड़ी शिकायत तो भगवान से कि उसने उन्हें एक बेटा तो दिया नहीं, दो-दो बेटियाँ दे दीं जी के जंजाल-सी। शिकायत तो उन्हें इस बेचारे नीम से भी थी। जब पतझर में पत्ते झरते तो वह पापा पर बरस पड़तीं, “कटवाओ इस मरे को। सूखे पत्ते और निम्बोरियाँ बुहारते-बुहारते कमर टूट जावे है हमारी।” पापाजी गुस्से में कुल्हाड़ी उठा लेते तो वह नर्म पड़ जातीं और उनके हाथ से कुल्हाड़ी छीनकर कहतीं, “हमारी हर बात ना सुना करो जी! जो जी में आवे गलत-सलत बोल देवें हम।” माँ जुबान की तीखी-कड़वी अवश्य थीं परन्तु मन की बुरी न थीं। उन दोनों बहनों में से जिस पर भी उनकी दग्ध दृष्टि पड़ती तुरंत पापाजी की नेह-

वृष्टि उसे हिम शीतल कर देती। अस्तु उनके हिटलरी अनुशासन और पापाजी के अतिरिक्त दुलार की छाँव में जीवन सहज गति से ही आगे बढ़ रहा था कि शांत झील में जैसे विधि ने कंकरियाँ फेंक हलचल मचा दी। पापाजी का तबादला आसाम के किसी ऐसे कस्बे में हो गया, जहाँ परिवार को नहीं ले जाया जा सकता था। पढ़ाई की भी अच्छी व्यवस्था नहीं थी वहाँ। वह तब 12वीं कक्षा में थी और उससे 4 बरस बड़ी जीजी एम.ए. प्रथम वर्ष में। माँ ने तूफान खड़ा कर दिया, “दो जवान छोरियों का बोझ हम अकेले ना उठावेंगे जी ! बड़की का ब्याह निपटाके जाओ।”

“अभी से ब्याह ? अभी पढ़ रही है बच्ची और अपनी ही संतान को बोझ कह रही हो भागवान ?” पापाजी ने तर्क रखा तो वह भड़क उठी, “हमने कह दी सो कह दी। नहीं तो एक छोरी को संग लिवा ले जाओ।”

माँ ने जैसे पत्थर की अमिट लकीर खींच दी थी। सो आनन फानन में वर खोज जीजी का विवाह कर दिया गया। जीजी ससुराल चली गई और पापाजी आसाम। रह गई इतने बड़े घर में वे माँ-बेटी। गहरी उदासियों से भरे रिक्त-रिक्त से दिन थे वो। वह घर, जो सुरिली चिरैया सी जीजी की चहक से चहकता था और पापाजी की नेह-फुहारों से भीगा रहता था, अब संजना को भूतों का बसेरा लगने लगा था। माँ के अनुशासन का चाबुक कुछ अधिक ही पैना होकर बरसने लगा था उस पर। जाने से पहले पापाजी फोन लगवा गये थे ताकि जब चाहे उनसे और जीजी से बात की जा सके लेकिन माँ के शासन में यह भी सरल न था। वहीं से फोन आये तो ठीक पर उसे अनुमति नहीं थी किसी को भी फोन करने की।

“हम ना भर सके तुम्हारी गप्पबाजी के बिल”, यह एक बात माँ ने जुबान पर गीता के श्लोक की तरह लिख ली थी जैसे। कभी-कभी उसे लगता कि वह उनकी माता नहीं विमाता हैं बल्कि उससे भी कुछ अधिक।

जब भी जीजी का फोन आता, वह कुछ और अधिक उदास हो जाती क्योंकि उनका स्वर डरा-डरा और सहमा-सहमा प्रतीत होता। ऐसा कुछ था, जो वह कहना चाहती पर कह न पाती... क्यों ? क्या ? यही तो समझ नहीं पा रही थी वह। फिर एक दिन पापाजी का फोन आया... माँ के लिये, “हमारे साथ धोखा हुआ है कुसुम ! हमारी किरण बिटिया सुखी ना है। लड़का ड्रग्स लेता है, उसी की पिनक में रहता है... और नामर्द भी है वह और उस पर जुर्रत तो देखो अपनी कुंठा में मारता-

पीटता है हमारी फूल सी बच्ची को।”

“देखो जी ! ब्याह किया है... कोई हंसी-ठठ्ठा तो नहीं ना ? निभाना तो होगा ही। सीता मैया भी तो....

“मेरी बच्ची सीता मैया नहीं है। वह नहीं सहेगी। तुम तुरंत उसे वहाँ बुला लो बल्कि खुद जा कर ले आओ उसे। समझीं ?” माँ की बात पर कैंची चलाते हुए तीखे स्वर में कहा था उन्होंने।

माँ खूब बरसी थीं और उससे बोली थीं “चल खत लिख उसे कि बाप दो जगह का खर्चा चला रहा है। क्यों उसे अपने दुखड़े सुना कर परेशान करती है। जैसा भी वर है, निभा उससे।”

“नहीं लिखूँगी मैं ऐसा कोई भी खत। सब जान कर भी आप काहे ना बुलवा रहीं जीजी को ? कैसी माँ हैं आप ?”

पहली बार माँ से खुल कर झगड़ी थी वह और आग्नेय नेत्रों से उसे देखते हुए माँ खुद खत-कलम ले कर बैठ गई थीं और न जाने कैसे अंगारे टांके थे उसमें उन्होंने कि चार दिन बाद ही जीजी की ससुराल से किसी अनाम व्यक्ति का फोन आया, “किरण आई. सी. यू. में है। तुरंत आये।” और माँ उसे संग ले कर तुरंत पहुँचीं पर जीजी जा चुकी थीं सांचे घर। उनकी कंचन काया जली-भुनी सी जमीन पर धरी थी। वह खुद जलीं या जलाई गई... यह रहस्य वह साथ ही ले गई और उनकी जली देह को फिर से अग्नि के हवाले कर वे लौट आये थे... लुटे-

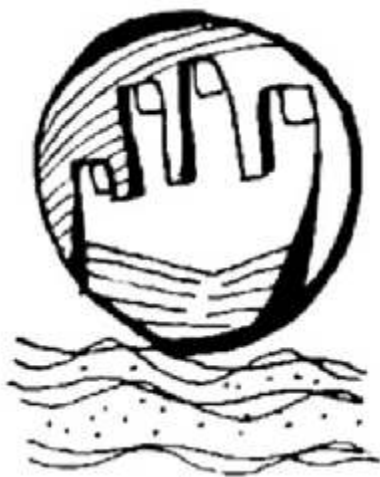
पिटे से। संजना की ज़िन्दगी की किताब का सर्वाधिक सुंदर अध्याय जल कर राख हो गया था। माँ की आँखों में आँसू थे, बारहमासी नदी से और मन में असीम पश्चाताप और साथ ही साथ डर भी कि पापाजी का सामना कैसे करेंगी।

“संजू ! अपने पापाजी को वह खत वाली बात ना बताइयो बेटा !” उन्होंने झिझकते हुए कहा तो उसने उन्हें तसल्ली दी थी, “आप न भी कहतीं तो भी मैं बताने वाली नहीं थी माँ।”

पापाजी आये आसाम से रोते-बिलखते और संजना को गले लगा कर बोले, “संजू ! तेरा पापा झूठा निकला। सही में उसने तेरी बहना को नहीं बुलाया। अब मैं तुझे दूर भेजूँगा ही नहीं।”

माँ से सिर्फ एक बात कही, “पढ़ गई कलेजे में ठंडक ? अपनी ही संतान की सगी ना बनीं तुम। तुम्हारा खत पाते ही निराश हो, जल मरी मेरी लाडो।”

न माँ की हिम्मत हुई और न ही उसकी यह पूछने की कि



उन्हें ये सब कैसे पता चला। उसके बाद एक मरघटी मनहूस मौन सारे घर में व्याप्त हो गया। पापाजी ने माँ से बोलना एकदम बंद कर दिया। माँ असंख्य बार उनसे क्षमा मांग चुकी थीं परन्तु पापाजी ने ज़रूर ठाक रउ न्हेंदेखात कन हीं। ए रभ रमे “जागो हे मेरी सूर्य-किरनिया....” या “जागो हे पापा की दुलारी....” गाते हुए डोलते फिरते या फिर नीम की छाया में बैठे मौन आँसू बहाते रहते। घर से बाहर भी सिर्फ एक बार निकले। संजना का रिज़ल्ट आने के बाद जब उसका कॉलेज में दाखिला करवाना था। उस दिन और उस दिन के बाद भी कई बार उसके सर पर हाथ धर कर कहा उन्होंने, “बिट्टो! खूब पढ़ियो और ब्याह भी तभी करियो जब तेरा जी चाहे और जिससे जी मिले।” और संजनाह रब रम नह म नय हस कल्प दोहराती रही कि वह कभी ब्याह नहीं करेगी और जीजी जैसी लड़कियों को जीने की राहें सुझाएगी पर पहले वह माँ-पापाजी के बीच खड़ी बर्फ की दीवार को तोड़ने के लिये कृतसंकल्प थी लेकिन भाग्य तो हाथ में नोकदार भाला लिये उन पर बार दर बार करने की तैयारी करके खड़ा था। माँ उसी के कहने पर उसे हॉस्टल में छोड़ कर पापाजी के साथ आसामजानेकाम नब नार हीथ रीप रवे अकेले ही चले गये... चुपचाप, बिना किसी से कुछ कहे-सुने.... आसाम नहीं... सच्चे धाम को। एक रात सोये तो अगली सुबह जागे ही नहीं। उफ! दो महीने में दो अपनों का चिर गमन... कैसे सह पाई थीं वे माँ-बेटी? मृत्यु से भी अधिक मारक हो उठे थे वे दिन, पल-छिन। माँ तो पहले पत्थर सी जड़ फिर आँसुओं का झरना हो उठी थीं। हर पल खुद को कोसतीं और बार-बार आत्महत्या की कोशिश करतीं और वह अपना गम भूल कर सिर्फ और सिर्फ उन्हें संभालने में जुटी थी। दरअसल उन दोनों की मौत की जिम्मेदार वह खुद को मान कर खुद को मिटाने पर तुली थीं और लगभग पागलपन की दहलीज़ तक आ पहुँची थीं। ये देख-सह कर आखिर एक दिन संजना के धैर्य का बांध टूट गया और वह पागलों की तरह रो-चिल्ला कर बोली, “आप स्वार्थी हैं माँ, जो सिर्फ खुद के लिये सोचतीं रहीं। एक बार भी मेरे लिये सोचा आपने कि आप चली गईं तो आपकी यह बेटी किसके सहारे जियेगी?”

माँ मुंह खोले हैरानी से उसकी ओर अपराधी भाव से देख रही थीं। बात का असर होते देख वह नमी पर उतर आई, “देखो माँ! वो दोनों जा चुके हैं पर हम दोनों जिन्दा हैं... तब तक जब तक साँसें चलेंगी और ये कब तक चलेंगी हम नहीं जानते और

बिना जाने हमें जीना होगा। माँ मेरी बहन चली गई पर कई बहनों को जाने से बचाना है मुझे और यह काम मैं अकेली नहीं कर सकती। मुझे आपका साथ चाहिये”, कह कर बहुत रोई थी वह और माँ भी उसे गले लगा कर फूट पड़ी थीं और उस ढेर से खारे पानी के साथ बहुत कुछ बह गया था। एक साँझ कॉलेज से लौटी तो माँ ने हुलसते हुए बताया “वो अठारह नंबर वाली शांता जीजी हैं न, उनकी बिटिया को दहेज की मांग कर करके मारा-पीटा जाता था। हमने समझाई थी उनको कि बच्ची को दरिदों के चंगुल से निकाल लावें। आज वो बच्ची को घर ले आई।”

फिर तो यह आये दिन का किस्सा हो गया। जहाँ उन्हें भनक भी मिलती कि कोई लड़की संकट में है या सताई जा रही है, वह तुरंत वहाँ जा पहुँचतीं। उसकी दसवीं पास माँ के पास काउंसिलिंग की वह समझ कहाँ से आई, वह हैरान होती। वक्त गुज़रता गया और बी. कॉम. पास करते ही घर के ही एक कमरे में उसने माँ के लिये कार्यालय सजा दिया और उसे नाम दिया ‘अस्तित्व : एक किरण’ और आशा से कहीं अधिक इस संस्था का प्रचार, बिना किसी प्रयत्न के ही होता चला गया। फिर एक चमत्कार ही तो हुआ कि एक नगर-सेठ की बिटिया को माँ और उसने दहेज प्रताड़ितों के पंजों से निकाला तो प्रसन्न हो उसने बड़ी बजरिया में स्थित एक शानदार ऑफिस माँ के नाम कर संस्था को भी पंजीकृत करवा दिया। बस फिर उन्होंने पीछे मुड़ कर नहीं देखा। कभी कुनैन सी कड़वी रही माँ अब मधु-मिश्री सी मीठी हो चुकी हैं।

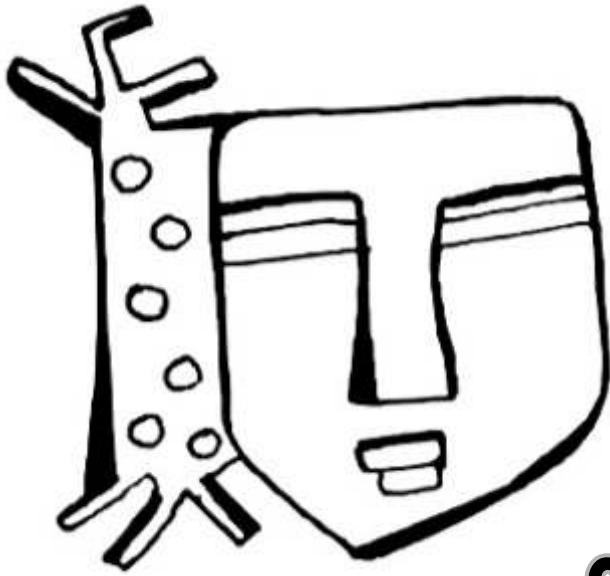
“अरे बिटिया! अंधेरे में काहे पड़ी हो? किवाड़ भी काहे ना बंद किये भीतर से?”

सहसा कमरा रोशनी से भर गया... चौंक कर उठ खड़ी हुई वह... सामने माँ खड़ी थीं।

“बस यूँ ही माँ! बीते दिनों की अंधेरी-उजली गलियों में भटक रही थी। ये बारिश भी न!... आप भीगी नहीं माँ?”

“अरे! बरखा तो कब की थम गई बिट्टो! एक बदली ही तो थी, जो तनिक सी बरस कर गुज़र गई,” माँ ने कहा तो एक गहरी ठंडी साँस ले कर बोली वह, “जी माँ! बदली ही तो थी वो, जो बरस कर गुज़र गई पर पीछे कितना कुछ छोड़ गई... अनगिनत यादें और एक स्वर जो बरसों से मेरी साँसों में धड़क रहा है... कानों में गूँज रहा है... और मुझमें शक्ति भर रहा है... बहुत कुछ कर गुज़रने की... बहना दूर मत जइयो... और माँ अब यह भी लगता है कि मेरी किरण जीजी जाकर भी हमारे आसपास ही कहीं मौजूद हैं... एक से अनेक हो कर।”

सम्पर्क : 2144 / 9, फरीदाबाद-121006



आशमा कौल

अदृश्य दीवार

ब

हुत डरते-डरते आज वह फिर पहुंची है उस देहरी पर जहां से निर्वासित हुए उसे तीस साल पूरे हो चुके हैं। अनु ने कांपते हाथों से दरवाजे पर लगी घंटी को बजाया।

“कुस माहरा छु, अचिव अंदर” – दूसरी तरफ से एक मीठी आवाज़ सुन कर अनु ने हिम्मत करके घर के अंदर प्रवेश किया और उसके पीछे-पीछे उसके पति रमेश और बच्चों ने।

“नमस्कार मे प्रजनवयमव नू तोहय”

“नमस्कार माहरा मैं अनु कौल दिल्ली से आई हूँ, ये मेरे पति और बच्चे हैं।”

“आप प्लीज बैठिए, मैं शीरीन हूँ, माफ कीजिए मैंने आपको पहचान नहीं।”

“जी आप मुझे नहीं पहचानती, है लेकिन यह घर मुझे बचपन से जानता है- कहते हुए अनु सुबक उठी। “यह मेरा मायका है, मेरा बचपन यहीं बीता है”- दीवार को हाथ से छूते हुए अनु तीस बरस पीछे चली गयी जब वह कॉलेज में पढ़ करती थी। कितना भरापूर रिवाज था उसका, माँ-बाबा, दादा-दादी, ताया-ताई, चाचा-चाची, दो भाई और तीन बहनें। बचपन के वे सुनहरे दिन उसकी आँखों के सामने चलचित्र से घूमने लगे।

“अनु जी चाय तो लीजिए”- शीरीन की मधुर आवाज ने

उसकी तंद्रा भंग की।

“ओह हो आपने तकल्लुफ क्यो की, हम सब अभी होटल से नाश्ता करके निकले हैं।”

“अरे तकल्लुफ कैसी, अभी तो आपने कहा कि यह आपका मायका है। आप अपने घर ही तो आई है” – कहवा और कश्मीरी रोटी पकड़ते हुए शीरीन बोली।

अनु ने देखा उसके दोनों बच्चे शीरीन के बच्चों के साथ ऐसे खेल रहे थे जैसे कि बहुत पुरानी दोस्ती हो और रमेश भी शीरीन के पति के साथ बातों में व्यस्त थे।

शीरीन ने माहौल को थोड़ा और हल्का बनाने के लिए अनु से कहा – “बहन आज तुम बहुत साल बाद घर आई हो तो चलो अपने घर के हर कमरे को अच्छे से देख लो।”

शीरीन ने अनु का हाथ पकड़ उसे अंदर लिया जहां से हल्के हल्के संगीत और तुंबकनारी की आवाज़ आ रही थी। कालीनों से सुसज्जित उस कमरे में दूल्हा दुल्हन बैठे थे और कुछ औरतें गीत गा रही थीं।

“अम्मीजान यह अनु है, दिल्ली से आई है तुम्हारी दूसरी बेटा”- शीरीन ने अनु को माँ से मिलवाया। अनु इनसे मिलिये यह आपके भाईजान और भाभीजान हैं। कल ही निकाह हुआ है इनका।

“अल्लाह आपकी जोड़ी हमेशा सलामत रखे और खूब खुशियां से नवाजे”- अनु ने आगे बढ़ कर दूल्हा-दुल्हन को

प्यार से चूम कर दुआएं दी। उन दोनों को देख कर उसे अपनी शादी से पहले के दिन याद आने लगे। घर के कमरे, आँगन और छत को देख कर उसकी आँखों के सामने बार-बार उस मनहूस दिन का मंज़र सामने आ जाता जब उन्हें धमकियों के डर से अपना घर छोड़ कर भागना पड़ा था। उस समय कितना रोई थी वह और जम्मू की उस जानलेवा गर्मी में रहने के सिवाय उनके पास कोई दूसरा रास्ता भी तो नहीं था।

अपनी आँखें पोंछते हुए अनु, शीरीन के साथ वापस बैठक में पहुँची तो शीरीन के अम्मा और अब्बा भी वहीं आ गए।

“बेटा बाहर

हालात ठीक नहीं हैं, कफ़रू लगा है, तुम्हें आने में कोई दिक्कत तो नहीं हुई”- शीरीन के अब्बा ने पूछा तो रमेश बोल पड़ा- अंकल जी आप ठीक कह रहे हैं, बाहर हालात ठीक नहीं हैं,

मैंने अनु को समझाया था लेकिन यह नहीं मानी और अपना घर देखने की जिद करने लगी।

शीरीन तुरंत बोली- “जीजाजी शीरीन की जगह अगर मैं होती तो मैं भी यही करती। सालों पहले छूटा हुआ अपना घर वह बिना देखे कैसे चली जाती।”

“सच कहूँ तो मुझे डर लग रहा था कि न जाने घर में कौन और कैसे लोग होंगे, लेकिन मेरे पाँवों ने मुझे से इनकार कर दिया और अब आप लोगों से मिलकर मैं बहुत खुश हूँ कि एक सभ्य और हर कौम की इज्जत करने वाला परिवार ही मेरे घर में रह रहा है” मुस्कुराते हुए अनु ने कहा तो शीरीन ने उसे अपनी बाहों में भर लिया।

“अनु अब चलें, देर हो रही है”- रमेश ने कहा तो अनु सबसे विदा लेने लगी तभी शीरीन की अम्मी अंदर से दो बैग लेकर आ गई और शीरीन को थमाने लगी।

“यह क्या है आंटी जी”

“कुछ नहीं बेटा, इतने सालों बाद अपने मायके आई हो, खाली हाथ नहीं जाने दूँगी। भाई की शादी में तुम्हारा और दामाद जी का सूट बनता है। बच्चों के लिए कुछ बादाम और अखरोट हैं, दादा दादी की तरफ से। अब जल्दी में जो हो सका मुझसे लेकिन अगले साल बच्चों की छुट्टियों में तुम्हें जरूर आना है, तुम्हें मौसी की कसम।”

“मौसी मैं यह इतना सामान नहीं ले सकती, आपका माँ सा प्यार मिला, वह क्या कम है”- रोते हुए अनु ने कहा तो पास खड़े अब्बू ने उसे सीने से लगाते हुए कहा -

“बेटा हम तो तुम्हारे कुसूरवार हैं। यह घर तुम्हारा था और आज भी तुम्हारा ही है, जब मन करे अपना मायका समझ कर आ जाना। तीस

साल पहले जो गलती यहाँ के सिरफिरोँ ने की थी उसका खामियाजा तो हमारी नसलें आज भी उठा रही हैं। पंडितों के जाने के बाद से तो हमें यह कश्मीर बिना रूह का शरीर लगता है।

“जी अब्बू आप सही कह रहे हैं”- अनु के मुँह से निकला।

“इन जिहादियों ने दो भाईयों के बीच एक ऐसे अदृश्य दीवार खड़ी कर दी है जिसे तोड़ना अभी मुमकिन नहीं लग रहा लेकिन प्यार और विश्वास की कुल्हाड़ी से हम इस नफरत की दीवार में सेंध तो लगा ही रहे हैं और ईशा अल्लाह एक दिन इसे तोड़ने में भी कामयाब रहेंगे।”

सभी के मुँह से एक साथ निकल ‘आमीन’।

बच्चों की कुछ समझ आया कि नहीं लेकिन तालियों से उन्होंने भी अपने बज्रों की मंशा पर अपनी स्वीकृति की मोहर लगा दी और अनु और रमेश सबको फिर आने का वादा देकर खुशी खुशी वहाँ से रुकसत हुए।

सम्पर्क : 2665 सेक्टर 16 फरीदाबाद- 121002
मोबाइल : 9868109905



दलवंती

प्रकृति बनाम स्त्री

आ

ज अनन्या ने सोच लिया था कि धरा और अम्बर को स्कूल भेजने के बाद जल्दी-जल्दी घर के सभी काम समेटकर कई दिनों से अधूरा पड़ा भीष्म साहनी का उपन्यास 'तमस' पूरा पढ़ लेगी। इस कारण

उसने बच्चों का टिज़न पैक करने के साथ ही अपना भी नाश्ता तैयार किया और गुनगुनी धूप का आनंद लेने के लिए छत पर चली आई। उसने मन-ही-मन निश्चय किया कि आज यह उपन्यास एक ही बैठक में पूरा करना है लेकिन कुछ ही पेज पलटने के बाद आलस ने घेर लिया और अधखुला उपन्यास जाने कब उसके हाथों से छिटककर धूप से सुरक्षा करने के लिए उसके चेहरे पर आ गया और इसी उर्नीदी हालत में अनन्या भी यादों के भँवर में उलझती चली गई। अपने पिछले कुछ सालों के फैसले पर विचार भी किया कि उसने क्या खोया व क्या पाया? बचपन से लेकर प्रौढ़ अवस्था तक की कहानी उसके मस्तिष्क में रील की तरह चलने लगी। किस प्रकार एक भोली व मासूम बच्ची परिस्थितियवश निष्ठुर व कठोर बन गई।

अनन्या का मध्यम वर्गीय परिवार बहुत ज्यादा धनाढ्य न सही परंतु खुशहाल अवश्य था। उसे वह सब कुछ मिला जिसकी किसी बच्चे को चाहत होती है। परिवार में सभी का भरपूर स्नेह तो मिलता ही...वह आस-पड़ोस में भी सभी की चहेती थी। अनन्या के सपने ज्यादा बड़े न सही पर सतरंगी तो थे ही।

साधारण कदकाठी व शक्ल-सूरत के बावजूद न जाने उसके व्यक्तित्व में कौन-सा आकर्षण था कि वह घर में प्यारी-सी राजकुमारी, दोस्तों की महज़िल में लीडर तथा स्कूल में सभी अध्यापकों के स्नेह की पात्र होती थी। सभी भाई-बहनों में भी छोटी होने के कारण मम्मी-पापा के साथ ही बड़े भाई-बहनों की विशेष स्नेह वर्षा भी सब्जी के साथ धनिये व मिर्च की तरह एक्स्ट्रा मिलती थी। चाहे खेलने के लिए खिलौनों की बात हो या फिर स्टेशनरी की, उसके पास सबसे निराली चीज होती थी।

हाँ!...बिल्कुलव हस। धारणव यक्तित्वक 1अ साधारण लज़्की थी। उसको कभी भी कहीं भी किसी ने भी उसके शारीरिक रंग-रूप के कारण हेय दृष्टि से नहीं देखा। शायद शालीन व गंभीर स्वभाव का होने के कारण उसका बाहरी रूप सदैव गौण रहा। विद्यालय और घर में सब अनन्या की बातों को ध्यान से सुनते व गंभीरता से लेते थे और स्कूल में तो कई बार उसकी सच्चाई व ईमानदारी की मिसाल दूसरे बच्चों के समक्ष पेश की जाती थी। समय का पहिया अपनी गति से चलता रहा और अनन्या भी पढ़-लिख कर अपने पैरों पर खड़ी हो गई। समय भी निर्बाध चलता रहता यदि उसका रिश्ता भास्कर से तय न होता। जब अनन्या की शादी तय हुई तो उसने स्वयं को बहुत भाग्यशाली समझा कि इतने सुंदर व आकर्षक भास्कर ने उसे शादी के लिए चुना किन्तु उसकी यह खुशी मुंगेरीलाल का सपना साबित हुई। जो शादी के कुछ समय बाद ही काफ़ूर हो

गई। कुछ दिन बाद ही उसे आभास हो गया कि भास्कर इस शादी को शादी नहीं बल्कि समझौता समझकर निभाना चाहता है। जब एक दिन उसने भास्कर को मायके से लिवाने आने की जिद की थी तो पहली बार भास्कर ने सपाट शब्दों में कहा, “जब मन हो आ जाना। मुझे ऑफिस में बहुत काम है और हाँ! मैं खाना भाभी जी के पास खा लूँगा।”

वह एकदम सकते में आ गई थी। क्या मेरी जरूरत सिर्फ खाना बनाकर खिलाने तक ही सीमित है। फिर भी वह स्वयं ही लौट आई थी। मम्मी-पापा को यह कहकर कि भास्कर ने जल्द बुलवाया है। कहाँ तो वह सपना देख रही थी प्यार-प्रेम व मान-सम्मान का लेकिन उसका सामना हो रहा था अपमान, उपेक्षा और तिरस्कार से। वह अपने व्यवहार से सबका दिल जीतने का प्रयास करने लगी। उसे स्वयं के व्यवहार पर भरोसा था लेकिन ससुराल में उसका व्यवहार गौण व शकल सूरत जिन्दगी के रंगमंच पर मुख्य भूमिका में थी। वह घर से बाहर व सहेलियों के सामने अपने व भास्कर के प्रेम के झूठे किस्से सुनाकर घर व बाहर वालों को तो उन दोनों के बीच सब कुछ सही होने का भरोसा दिला देती किन्तु अपने मन को तसल्ली क्या कहकर देती? दोहरी जिन्दगी जीना बहुत मुश्किल हो रहा था। फिर शिकायत किसकी... व कहाँ करे? उसने भास्कर को स्वयं से अलग समझा ही नहीं। वह खुद की शिकायत किससे करे। शादी के बाद प्यार-प्रेम, रूठना-मनाना सब कुछ सपने जैसा ही रहा। उसे दिल से न कभी भास्कर ने चाहा, न प्यार किया। उसने बहुत बार एक निरीह प्राणी की भाँति स्वयं को बेबस महसूस किया। एक दिन तो हद हो गई। भास्कर के तीखे शब्द तलवार की भाँति उसके अंतर्मन को भेदते चले गए थे। एक फंक्शन में दोस्त के पास खड़े भास्कर से मिलने पर उन्होंने घर आकर खूब खरी खोटी सुनाते हुए कहा, “क्या जरूरत आन पड़ी थी। तुम्हें मेरे पीछे-पीछे आने की? तुम्हें कहीं बाहर ले जाता हूँ, ये क्या कम है। जो अपनी मनहूस शकल लेकर परिचय देने चली आई, मैं मिसिज़ भास्कर। याद रखो नाली की ईंट कभी मुंडेर पर शोभा नहीं देती।”

पता नहीं कितने दिनों तक मनहूस, नाली की ईंट हथौड़े की तरह दिमाज़ में बजते रहे थे। बदले में मैं सिर्फ इतना ही कह

पाई, “भास्कर! तुम्हारे ऊपर कोई दबाव नहीं था। अगर मुझसे शादी नहीं करनी थी तो, मना कर देते। मुझे भी अच्छा लगता। कम-से-कम हर रोज ज़लील तो नहीं होना पड़ता और किस बात का बदला ले रहे हो? ज़बरदस्ती तुम्हारे घर नहीं आई थी। हम दोनों ने शादी की...।”

इतना कहते ही एक झनाटेदार थप्पड़ उसके गाल पर आ पड़ा था। उस दिन के बाद अनन्या ने अधिकार की बात दोबारा कभी नहीं की। सामाजिक तौर पर पति-पत्नी के इस रिश्ते से इस दौरान दो प्यारे बच्चे भी उनकी जिंदगी में आ गए। पति के व्यवहार में थोड़ा परिवर्तन जरूर आया लेकिन वह दर्ज़ा कभी

नहीं मिला जो हर स्त्री पति से अपेक्षा रखती है। भास्कर को शादी एक बंधन और प्यार जताना सिर्फ ढोंग नजर आता। अनन्या इन परिस्थितियों के साथ जीने का अभ्यास कर ही रही थी और समय के साथ उसने भास्कर के रूखे बर्ताव को भी उसका स्वभाव

मान लिया था लेकिन अचानक एक अनचाहा सच सामने आया जिसकी उसने कल्पना भी नहीं की थी। भास्कर ने एक साधारण शकल-सूरत की लड़की से सिर्फ इसलिए शादी की ताकि वह आवाज़ न उठा सके। उसे भास्कर पर किसी दूसरी औरत से रिश्ते रखने का शक तो था। लेकिन यह अंदाज़ा नहीं था कि यह सच्चाई इतनी पीड़ा दायक व दर्द भरी होगी। अनन्या भगवान से यही प्रार्थना करती रही कि हे भगवान! मैं झूठी साबित हो जाऊँ और जो

कुछ पता चला है, वह गलत साबित हो जाए। लेकिन यह सब झूठ नहीं था और इस सच्चाई ने मानो अनन्या से इस रिश्ते से बची-खुची उम्मीद को भी छीन ली।

एकड़-सानव घोंत की कसीम मूर्तिक पीपूजाकर रेअर अचानक उसे पता चले कि वह मूर्ति खंडित है। उसे अपनी पूजा और समर्पण व्यर्थ प्रतीत होने लगता है क्योंकि खंडित मूर्ति को घर में रखा तो जा सकता है, उसकी पूजा नहीं की जा सकती है। अनन्या स्वयं को उस बुढ़िया के स्थान पर रख कर देखती जो सारी उम्र इसी गलतफहमी में खुश रही कि उसके पास एक सिक्का है। सिर्फ एक सिक्के को पाकर वह इतनी खुश थी मानो सारे जहाँ की दौलत उसकी मुट्ठी में हो। एक दिन अचानक उसे पता चलता है कि जिस सिक्के को वह छाती से लगाए घूम रही है,



वह तो छोटा है। उसकी सारी दौलत, सारी खुशी एक पल में काफूर हो गई।

अनन्या ने स्वयं को इसी तरह लुटा हुआ पाया। वह कभी खुद को सच्चाई जानने की जिद करने के लिए कोसती, कभी इसलिए धिक्कारती कि किस प्रकार के इंसान के सामने उसने अपना सब कुछ समर्पित कर दिया। अपनी खुशियों को त्याग कर उसकी खुशी में ही अपनी खुशी को ढूंढा। क्यों उसने सोच लिया कि मम्मी-पापा को सब बताएगी तो रिश्ता खराब हो जाएगा तथा समाज में उनकी बदनामी होगी। वह इस बात को भुला नहीं पा रही थी कि जिस उपेक्षा व नीम जैसी कज़बी बोली को भास्कर का स्वभाव मान बैठी थी। वह जान बूझकर किया गया अत्याचार था। वह सोचती रह गई कि उसे किस नाते व कौन-सी कसौटी पर परखा जाता रहा। प्रकृति के दिए बाहरी आवरण पर इतना घमण्ड क्यों? इसमें जुद का कमाया क्या है? उन दिनों यही सोच-सोचकर स्वयं से घिन्न होने लगी। क्यों होने दिया खुद के साथ इतना दुर्व्यवहार, इतना अत्याचार?

अब ये रिश्ता उसे न निगलते बनता था और न उगलते। पति के बिना रह भी नहीं सकती थी क्योंकि अनन्या का ये पहला व आखिरी प्रेम था। उसको दिल से चाहा था लेकिन अब भास्कर के साथ रहना भी मुश्किल लग रहा था। उसे समझौता करना था। उसके सामने बच्चों का भविष्य, उनकी आंखों में तैरते प्रश्नचिन्ह थे। जिस परिवार के सम्मान की खातिर इतनी जिल्लत का सामना किया? अब भी तो भाई-भाभी का वही सम्मान दांव पर है। तराजू के एक पलड़े में अनन्या का खंडित भरोसा था तो दूसरी तरफ उसके आदर्श, विचार और स्वाभिमान।

भास्कर के बाहरी आभा मंडल के पीछे छुपे चेहरे ने उसको अपने स्वाभिमान के साथ खड़े होने के लिए मजबूर कर दिया। आज अनन्या अपने खोए आत्मविश्वास को समेट कर एक बार फिर से नई जिंदगी की शुरुआत करने को तैयार थी। वह एक दृढ़ निश्चय ले चुकी थी कि वह बच्चों से उनके पिता का हक तो नहीं छीन सकती किन्तु भास्कर से पति होने का अधिकार अवश्य वापस ले सकती है।

बड़ी अजीब बात है ना समय भी कैसे करवट बदलता है। एक दिन भास्कर ने स्वयं के बाहरी आभा मंडल को बहुत ऊँचा आँक लिया था। उसने खुद की कमियों को छुपाकर एक मासूम को उस गुनाह की सजा दी जो उसने कभी किया ही नहीं। आज न्याय विपक्ष के पाले में था। अनन्या को याद आया कि जब उसने भास्कर से रिश्ता खत्म करने की बात दृढ़ता से कही थी तब भास्कर भी उसके इस रूप को देखकर सहम गया था। उसने

अनन्या के सामने स्त्री की सहनशीलता की लाख दुहाई दी थी। स्त्री की प्रकृति से तुलना कर माफ़ी भी माँगी। अनन्या अपने स्वाभिमान की ज़ातिर अपने फैसले पर अडिग रही। उसने साफ़ कहा, “यह मत भूलो भास्कर! यह प्रकृति का ही नियम है, हमारी गलती हजार बार भी माफ़ हो सकती हैं किन्तु अपराध एक बार भी नहीं। जानबूझ कर किए अपराध का दण्ड सदैव भुगतना ही पड़ता है। उसको प्रकृति भी माफ़ नहीं करती।”

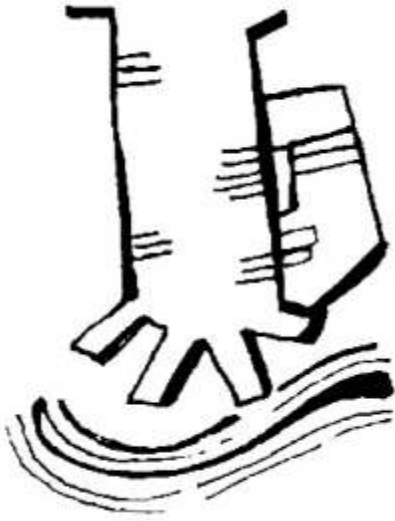
विचारों का ये सिलसिला न जाने कहाँ जाकर रुकता यदि पूर्वी की आवाज़ ने ध्यान भंग न किया होता और अनन्या ऐसे जागी जैसे स्वयं अपने अतीत का बोझ ढोते-ढोते थक गई हो। उसे भास्कर के शब्द कानों में एक बार फिर से सुनाई पड़े। मुझे माज़ कर दो अनन्या!

वह झटके से उठ बैठी तथा विचार किया कि उसने भी तो भास्कर के साथ वही किया जो भास्कर ने किया था। अब दोनों में अंतर कहाँ रह गया था। जैसे को तैसा जवाब देकर क्या वाकई मैंने महानता का कोई काम किया है? इतने वर्षों से मैं भी भास्कर के साथ वही कसैला बर्ताव करती रही। मैंने भी भास्कर को नीचा दिखाने का कोई अवसर कहाँ जाने दिया।

क्या वाकई प्रकृति सच में इतनी ही निष्ठुर होती है? तभी दूर लाउडस्पीकर पर बजते गाने की आवाज़ कानों में पड़ी, कभी किसी को मुज़म्मल जहाँ नहीं मिलता। कहीं जमीं तो कहीं आसमां...। अनन्या उठी और यंत्रवत फोन की तरफ बज़ी और भास्कर को फोन मिलाकर कहा, “आज जल्दी घर आ जाइएगा। कहीं बाहर घूमने चलेंगे।” इतना कहकर उसने रिसीवर रख दिया और महसूस किया मानों बरसों का मन में जमा मैल एक पल में धुल गया।

सम्पर्क : प्राथमिक शिक्षिका
राजकीय कन्या प्राथमिक पाठशाला, भदानी
मोबाइल : 8607877527





उर्मि कृष्ण



सैर जनाना डिब्बे की

स्व

ण्डवा जंक्शन पर लोगों की भीड़ देखकर लगता है आज कोई घर में नहीं रहा। सबने कहीं न कहीं जाने की ठान ली है। तीसरी घंटी बज गई। पठानकोट मेल आ रही है।

सब सामान उठा कर गाड़ी पर हमला बोलने को तैयार हो गए। प्रीति का कुली भी अटैची और बैग लेकर आगे बढ़ने लगा। प्रीति ने उसे पुकार कर कहा--‘उधर कहां जा रहे हो?’

‘बहन जी, जनाना डिब्बा इधर ही रुकेगा।’ कुली ने अपने गहन अनुभव की बात कही। वैसे एक अटैची और बैग के लिए कुली करने की आवश्यकता तो नहीं थी, किन्तु कैसी भी भीड़ हो कुली बैठा ही देते हैं, यही सोच कर प्रीति ने पांच सौ पैसे कुली पर कुर्बान किए थे। और फिर जनाने डिब्बे में सफर करने का वायदा किया था तभी मां उसे अकेले भेजने को राजी हुई थी।

प्लेटफार्म जब दूर तक खिसक गया तब प्रीति ने डिब्बे के अंदर नजर घुमाई। कुछ देर तो उसकी समझ में ही नहीं आया कि इसे जनाना डिब्बा कहे या सामान डिब्बा। सफर तो उसने कई बार किया था, किन्तु जनाने डिब्बे में बैठने का सौभाग्य उसे आज ही मिला था। वह खड़ी थी। उसके साथ चढ़ने वाली सभी औरतें खड़ी थीं। कुछ एक औरतें जगह के लिए लड़ भी रही थीं। सीट उन्हीं की थी जो सीधे बम्बई से ही बैठ कर आ रही थीं। उनका फैल कर बैठने का अंदाज ही यह बतला रहा था। कहीं भी जाओ, औरतों के साथ दो बातें देखने की अवश्य

मिलती हैं-- सामान और बच्चे। बच्चे भगवान की देन हैं। सामान उनकी अपनी पसन्द है।

खड़े-खड़े प्रीति के पैर दर्द करने लगे। उसके दिल में आया कि यदि उस जनाने डिब्बे की बजाय वह ‘कामन’ डिब्बे में होती तो इतनी देर में तो कई लड़के अपनी सीट के लिए उससे आग्रह करने लगते। ऐसी जगहों में कितने हेल्पिंग हो जाते हैं, लड़के! कई बार तो उनके इस हेल्पिंग नेचर पर गुस्सा आने लगता है। कुछ भी हो, हमें कौन-सा ट्रेन में जिंदगी बसर करनी है।

--आप कहां जायेंगी बहन जी?

--ग्वालियर जाना है।

--बहन दूर का सफर है, खड़ी कब तक रहेंगी?

प्रीति ने सोचा था अब यह औरत अपने पास अवश्य ही थोड़ी सी जगह दे देगी। पर उसने बैठने की बात कही इससे ही काफी राहत मिल जानी थी, प्रीति को!

एकह मउम्रल डकीने थोड़ा धर-उधर खिसक कर कहा--बैठ जाइए आपको जगह ही कितनी चाहिए।

‘फिर भी जगह नहीं मिल रही है’ प्रीति मुस्कराई, लगता है आगे से कभी जनाना डिब्बे में सफर करना हो तो कुछ दिन अनशन करके शरीर घटा लेना चाहिए। सामने बैठी मोटी औरत ने गुस्से की नजर प्रीति को मारी। सामान के मारे मुंह तो चला सकते थे हाथ पैर नहीं। प्रीति को उस लड़की तक पहुंचना असाध्यल गर हाथ। इस बकुछत ठोठ कहै पयैम टके, कनस्तर, झाड़ू इनके लाने की क्या जरूरत थी। मेरी समझ में ये

तो हर जगह किसी भी स्थान पर मिल जाते होंगे। बड़ी मुश्किल से सामान पार करते हुए प्रीति कह रही थी।

‘सामान कौन तुम्हारे सिर पर रखा है!’

सामने की सीट पर फैलकर बैठी एक महिला ने गुस्से में कहा। उसे सामान का अपमान सहन नहीं हुआ। प्रीति ने होठों के अन्दर ही कहा, ‘कसर ही कौन सी है, सिर पर रखने में।’

इतना दुबला शरीर होने पर भी प्रीति को बैठने में बड़ी तकलीफ हो रही थी। स्टेशन पर स्टेशन निकल जाते। जिस स्टेशन पर गाड़ी रुकती किंवटल-दो किंवटल सामान के साथ कुछ औरतें डिब्बे में आ धंसतीं। क्या करें पूरी गाड़ी में दो ही तो जनाने डिब्बे हैं। हंसी मजाक, बातचीत कम, लड़ाइयां अधिक। वे लड़ती हुई चढ़ती हैं, और हंसती हुई उतरती हैं। डिब्बे में धंसते समय जो दुश्मन हैं, उतरते समय वे अंतरंग मित्र हैं।

दूर के सफर वाली औरतें अपने सामान के साथ ‘फिक्स’ हो जाती हैं। उठने में उन्हें कुछ जगह भी तो चाहिए। हिम्मत करके थोड़ा हिलें-डुलें तो जगह कम होने का डर, दूर के सफर में दोस्ती तो हो ही जाती है। यह दोस्ती किस दिन काम आयेगी एक महिला ने दोस्ती का लाभ उठाने के लिए प्रीति से कहा, मेरी जगह देखना मैं जरा बाथरूम हो आऊं। बाथरूम तक जाती, उस महिला को देख कर प्रीति को लगा कि एवरेस्ट पर चढ़ना शायद इससे तो सरल ही होगा।

कितनी औरतों के आवाज रूपी बर्फ के ढेले खिसके, कितनी लम्बी छलांगें भरनी पड़ीं। कभी ऊंचे चढ़कर ऊपर की बर्थ पकड़ी, कभी नीचे फूंककर पांव रखा। बड़े-बड़े ट्रकों के सुमेरू लांघे, तब कहीं लक्ष्य तक पहुंचा गया। क्या अपनी जिंदगी में और कभी इतना व्यायाम किया होगा इस औरत ने? औरतें दुबली होने के लिए डाइटिंग करती हैं। क्यों नहीं जनाने डिब्बे में सफर करतीं?

रात हो चली थी प्रीति को नींद आने लगी, सफर की थकान भी बढ़ती जा रही थी। उसने अपने ऊपर वाली बर्थ का सामान इधर-उधर करके सोने की सोची। सामने वाली बर्थ उसे दिखाई दे रही थी। उस पर कोई तगड़ी महिला सो रही थी। सोते-सोते ही खाना-पीना बोलना सब कार्य सम्पन्न हो रहा था, उसका। जगह छिन गई तो रात कैसे कटेगी। सफर तो रातभर का है। जरूर इस औरत ने जगह हथियाने की कहीं ट्रेनिंग ली होगी।

प्रीति ने शरणार्थी की तरह

गिड़गिड़ाकर पहले इसी औरत से कुछ देर जगह देने को कहा।

‘जा-जा, बड़ी आई कितनी दूर जाना है मुझे!’ जैसे वह प्रीति पर दूर के सफर का एहसान रख रही हो। प्रीति को ऐसा लगा कि सारी जनानियां सफर करके एक-दूसरे पर एहसान कर रही हों। दूर के सफर का, सामान का, बच्चों का, क्या कम एहसान है, इनके एक दूसरे पर!

प्रीति ने बड़े कष्ट से घूम कर जब अपनी सीट के ऊपर वाली बर्थ को देखा। जिसे वह सामान समझ रही थी, वह तो कोई महिला थी, जो सिर से पैर तक चादर ओढ़े सो रही थी। दिनभर बीत गया इस औरत की ओर तो उसका ध्यान ही नहीं गया था। वह उसकी सीट के ठीक ऊपर थी इसीलिए। वह कुछ क्षण यही सोचती रही कि तीन किंवटल का यह बोझ कब और कैसे इस बर्थ पर पहुंचा होगा? सचमुच वह दृश्य देखने लायक रहा होगा जब वह औरत ऊपर चढ़ी थी या चढ़ाई गई होगी।

थोड़ी देर बाद उस औरत ने अपने मुंह का आवरण हटाया तो प्रीति ने हिम्मत करके पूछ ही लिया, ‘आप कहां जा रही हैं?’

‘आगरा’ उस औरत की आवाज के धक्के से प्रीति फिर अपनी जगह लौट आई। इस बार फिट होने में उसे अधिक तकलीफ हुई। रात और उसके साथ बोरियत भी बढ़ती जा रही थी। आगरा जाने वाली औरत जोर-जोर से कह रही थी, जवान लड़कियां तो खड़े-खड़े भी जा सकती हैं, तबियत खराब है इसलिए थोड़ा आराम कर रही हूं! सुबह नौ के रात के नौ बज गए और थोड़ा आराम! यह सोच कर प्रीति को जगा जैसे उसकी दशा भी कुछ-कुछ आगरा (जहां पागलखाना है) जाने जैसी हो रही है।

अब रास्ता घटाने के लिए प्रीति पास बैठी एक औरत से बातें करने लगी, शायद आपका ट्रांसफर हो गया है?

‘नहीं जी, एक शादी में जा रही हूं।’

‘अच्छा, मुझे आपका सामान देखकर शक हुआ।’

‘सामान को तो ऐसा है बहन जी, क्या छोड़ें, क्या न छोड़ें।

बच्चों का साथ है। चार दिन रहना है। फिर शादी के घर में तो आप जानती ही हैं कोई चीज वक्त पर नहीं मिलती।’

उसकी बातों को विराम देने के लिए प्रीति ने विषय बदला ‘बच्चेस बअपकेह’ हैं?’

‘अपने क्या भगवान के हैं। पांच ही तो हैं। दो तो भगवान ने दिए जैसे नहीं।



पढ़ी-लिखी औरतें, डाक्टर, मास्टर और सरकार तक बच्चे कम करने को कहते हैं। भला बताओ तो इन लोगों को कौन हमारे बच्चों को खिलाना-पिलाना पड़ता है?’

महाज्ञानी की तरह वह बोले ही जा रही थी।

एक बच्चे ने नींद में ही बिस्कुट मांगा। वह उधर उलझ गई। उसकी बातों पर ब्रेक लग गया। बच्चे को बिस्कुट देकर जब वह प्रीति की ओर मुड़ी तो उसने प्रश्न किया, ‘आपके कितने बच्चे हैं?’

‘मैं तो अभी बच्चे के बाप की तलाश में हूँ’ प्रीति ने हंसते हुए कहा।

‘याने कुंआरी हैं, अभी तक?’ क्या जमाना आ गया है। इत्ती-इत्ती बड़ी लड़कियों की शादी नहीं होती। प्रीति इस तरह की बात सुनने की आदी हो गई थी, इसलिए कुछ ऊंचा हंसने लगी।

ग्वालियर नजदीक आ रहा था। प्रीति उतरने की तैयारी करने लगी। अपना-अपना सामान संभालने के लिए औरतों में कोलाहल बढ़ गया किसी औरत का पैर ट्रंक के नीचे दबा जा रहा था और वह गुस्से में अपना ज्ञान उंडेल रही थी। ‘इतना सामान ले के चलना हो तो हवाई जहाज में जात्रा किया करो, जनाने डिब्बे में नहीं।’

‘अच्छाराम-रामबहनजी! मैंने नीचे उतरकर जाने डिब्बे समाप्त करने का आन्दोलन चलाऊंगी।’

सम्पर्क : ए-47, शास्त्री कालोनी अम्बाला छावनी-133001



लघुकथा

उम्र कैद

डॉ. दुर्गा सिन्हा

‘‘मैं तुमसे शादी कर के तुम्हारी घनी जुल्फों में डूब कर जीवन भर के लिए खुद को कैद करना चाहता हूँ, बोलो ! क्या तुम राजी हो ? देखो मेरा दिल न तोड़ना, मैं तुम्हारे बिना एक पल भी ज़िन्दा नहीं रह सकता। जान दे दूँगा।’’

भावनाओं में बहते हुए शाहिद ने मधुरा को अपनी मजबूत बाँहों में जकड़ लिया।

मधुरा कुछ न बोली। क्या कहती। शाहिद उसका पहला और शायद अंतिम प्यार था। वह भी उसे खोना नहीं चाहती थी। शाहिद से वह भी बेइन्तहा प्यार

करती थी। एक पल के लिए भी

जुदा होना नहीं चाहती थी।

‘कुछ बोलो न मधुरा।’ शाहिद अधीर हो उठा। मधुरा की चुप्पी उसे आशंकित कर रही थी।

‘मेरे माता-पिता नहीं मानेंगे। कैसे बताऊँ उन्हें?’

मधुरा ने अपने मन का डर ज़ाहिर किया।

‘बस इतीस बीतत ?’ शाहिदल परवाहीज तातेहुए बोला।

‘यह इत्ती सी बात नहीं, बहुत बड़ी सी बात है, तुम समझ नहीं रहे हो।’ मधुरा ने समझाने की कोशिश की।

‘छोड़ो परवाह करना। तुम मुझसे प्यार करती हो न?’

‘खुद से भी ज्यादा।’ मधुरा का मन भीग गया। मधुरा शाहिद की बाहों में समा जाना चाहती थी।

‘हम कल ही यहाँ से कहीं दूर चले जाएँगे। कल क्यों ? आज अभी, इसी वक्त। चलो चलते हैं कहीं दूर, अपने सपनों के आशियाने में।’

शाहिद ने पकड़ और मजबूत करते हुए कहा।

शाहिद बोलता जा रहा था। मधुरा निर्णय ले रही थी। मन पक्का करने की कोशिश कर रही थी। आज मधुरा इस दुनिया में नहीं और शाहिद ! उम्र कैद में।

सम्पर्क : 2326, सेक्टर- 9, फरीदाबाद-121006

मोबाइल : 9910408884

पुस्तक समीक्षा



कृति : कूप-कानन (प्रबंध काव्य)
लेखिका : सरोज दहिया
मूल्य : ₹ 400 सजिल्द
प्रकाशक : सरोज प्रकाशन, हलालपुर-सोनीपत(हरि.)

सुप्रसिद्ध रचनाकार सरोज दहिया द्वारा रचित प्रबंध महाकाव्य कृति 'कूप कानन' के अध्ययन, मनन, और अनुशीलन के उपरान्त निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि 'कूप कानन' कृति महाकाव्य के लक्षणों के आधार पर एक सफल प्रबंध महाकाव्य कृति है। यह भाव सौंदर्य, शिल्प सौष्ठव एवं रचनात्मक अभिप्रेत की दृष्टि से अप्रतिम एवं प्रभविष्णु कृति है। इसका कथानक बड़ा सरस, रोचक कौतूहलवर्धक एवं सन्देशप्रद है, जो श्रीमद्भगवत महापुराण के नवम स्कंध के अट्टारहवें अध्याय में राजा ययाति की कथा पर आधारित है। राजा ययाति सम्भ्रांत कुल में उत्पन्न धीरोदात्त एवं धीर प्रशांत नायक हैं। कथा में इनके जीवन की विशद्

व्याख्या की गई है। कवयित्री सरोज दहिया ने मूल कथा को मनोवैज्ञानिक आधार पर आठ खंडों में सुसज्जित करके दोहे और चौपाई छन्द के माध्यम से बहुत प्रभावशाली तरीके से सरस शैली में चित्रित किया है तथा कथा से पूर्व मंगलाचरण के रूप में माँ सरस्वती की वंदना प्रस्तुत की है। ये आठ खण्ड क्रमशः आदि खंड, वरदान खंड, संताप खंड, विवाह खंड, आश्रम खंड, गृहस्थ खंड, शाप खंड व वैराग्य खंड हैं। कृति में पात्रों की संख्या कथा के अनुरूप संतुलित है। इसका उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि चारों पुरुषार्थों को दृष्टिगत रखते हुए मानव जीवन में सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् की स्थापना करना है और त्याग के महत्व को प्रतिपादित करना है। इसमें शांत, श्रृंगार व करुण रस की प्रधानता है। देशकाल और वातावरण कथानुरूप है। भाषा सरल, सुबोध, खड़ी बोली हिंदी है। बीच-बीच में तत्सम व तद्भव शब्दों का समावेश भी हुआ है। शैली सरस, चित्रात्मक और विश्लेषणात्मक है। अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग देखते ही बनता है, विशेष रूप से अनुप्रास, उपमा, रूपक, यमक, दृष्टांत, श्लेष, अतिशयोक्ति, पुनरुक्ति आदि का प्रयोग हुआ है। निष्कर्षतः जीवन में त्याग की उपादेयता को रेखांकित करती प्रबंध महाकाव्य कृति 'कूप-कानन' भाव सौंदर्य, शिल्प सौष्ठव, शीर्षक, सन्देश, काव्य प्रयोजन, उद्देश्य एवं रचनात्मक अभिप्रेत की दृष्टि से अत्यंत उत्कृष्ट एवं उपादेय है। यह पठनीय एवं संग्रहणीय काव्य कृति है। सुधीजनों एवं साहित्य जगत में यह अपना उल्लेखनीय स्थान बनाएगी, ऐसा मेरा ध्रुव विश्वास है। शुभकामनाओं सहित।

समीक्षक : ज्ञानप्रकाश 'पीयूष' 1/258, मस्जिदवाली गली, तेलियान मोहल्ला, सदर बाजार, सिरसा-125055



कृति : लम्बी नाक (कहानी संग्रह)
लेखिका : सरोज कृष्ण
मूल्य : ₹ 175/-
प्रकाशक : रंगमंच प्रकाशन, दशहरा ग्राउंड, सवाई माधोपुर (राजस्थान)

कहानी संग्रह 'लंबी नाक' वर्तमान पीढ़ी के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो सकता है। आज के दौर की पीढ़ी को नई दिशा देने में लेखिका सरोज कृष्ण ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। कहानी 'लंबी नाक' आधुनिकता के साथ साथ व्यंग्य का पुट लिए है। पुस्तक की हर रचना उद्देश्य परक है। 'लंबी नाक' कहानी बेवजह के दिखावे के कारण बेटियों की जिंदगी से खिलवाड़ करने की मानसिकता का किस्सा है। किस प्रकार थोथी आदर्श वादिता के चलते दो बेटियों की शादी में बाधा बनते मां बाप की लंबी नाक कैसे परशानियों का सबक बनती है, यही इसकी कथावस्तु है। यह शाल उसके शव पर डाल दी जाती है। कहानी

'टिप' रेस्तरां के बेयरे द्वारा टिप के नाम पर घूस लेकर कम बिल बनवाने की कहानी है तो 'भावनाओं की कदर' में पति पत्नी की तकरार दिखाई देती है। 'पश्चाताप' में आजकल की युवा पीढ़ी की ऐसी दास्तान है जो नशे की गिरफ्त में आ रही है। कहानी 'उम्मीद' आज की युवा पीढ़ी को संस्कारवान बनाने की दिशा में एक कदम हो सकता है। 'खूनी शिकंजा' में जीवन शैली से होने वाली समस्याओं की बात कही गयी है। इसमें कैंसर, मलेरिया, टीबी, डायरिया, हेपेटाइटिस और एड्स जैसी बीमारियों का जिक्र है। ये क्यों होती हैं? कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि कहानियां युवा पीढ़ी को सतर्क करती हैं और उन्हें रास्ता भी दिखाती हैं।

समीक्षक : मनमोहन गुप्ता मोनी, 56 सिल्वर सिटी एक्सटेंशन, जीरकपुर। मोबाइल 9872206135



कृति : खून के रिश्ते (नाटक)
संकलन : मधुकांत
मूल्य : ₹ 400/-
प्रकाशक : मोनिका प्रकाशन, दिल्ली

कबीर जी के अनुसार दान देने से धन नहीं घटता है। उनका यह कथन धन के मामले में शायद कभी गलत हो भी जाए लेकिन रक्तदान के मामले में कभी गलत नहीं होगा। आधुनिक विज्ञान भी इसे प्रमाणित करता है। कुछ इसी तरह का संदेश देने का प्रयास करती है आलोच्य कृति 'खून के रिश्ते'। इस संकलन में सात साहित्यकारों के नौ नाटक हैं। सभी नाटक रक्तदान पर आधारित होने के बावजूद अपना अलग-अलग कलेवर रखते हैं। संकलन में मधुकांत के तीन नाटक हैं। संकलन की शुरुआत 'रक्तदान सबसे बड़ा महान' मधुकांत का नुक्कड़ नाटक है। यह रक्तदान से संबंधित भ्रांतियों का निवारण और सावधानियों का वर्णन करता है। 'एनीमिया से जंग' में नीली गोलियों पर डरे हुए बच्चों द्वारा किए गए तमाशे पर मीडिया की लापरवाही, कमीशन खोरी, और पलायनवादी सोच का यथार्थ चित्रण है। और संकलन का समापन मधुकांत के ही नाटक 'रक्तदानी चश्मा' से हुई है। रक्तदान के साथ हैलमेट के महत्व को इंगित करता यह नाटक हमें प्रेरित करता है कि अपने बुजुर्गों का जन्मदिन रक्तदान कैम्प लगाकर मनाना चाहिए; जिससे समाज और राष्ट्र का भला हो। एक सामान्य इंसान अपनी लगन से दूर-दराज के अंचल में रक्तदान की लौ कैसे चला सकता है, यह 'हरिराम नाई' में डॉ. कुँवर प्रेमिल समझाने में सफल रहे हैं। 'गुर्दे का दान' में डॉ. हरिशरण वर्मा हमारी जाति व्यवस्था पर करारी चोट करते हुए आदर्श समाज का चिंतन प्रस्तुत करते हैं। इसी प्रकार प्रो. अमृतलाल मदान जाति, धर्म की संकीर्ण भावना पर करारी चोट करते हुए बताते हैं, रक्त की थैलियों पर जाति धर्म नहीं ब्लड ग्रुप के 'ठप्पे' होते हैं। आमतौर पर मानवीय स्वभाव काम को लटकाना पसंद करता है लेकिन समय की अपनी महत्ता है। जब वक्त की ठोकर लगती है तब रक्तदान से बहानेबाजी करके भागने वाला इन्सान भी रक्तदान हेतु, 'अगला शिविर' का इंतजार करता है। डॉ. शील कौशिक अपने नाटक में इसे बखूबी प्रस्तुत करने में कामयाब रही हैं। संकलन के सभी नाटकों के पात्र घटनाओं की गतिशीलता के साथ संगति बैठाने में सफल रहे हैं। संवाद सरल, सुबोध, स्वाभाविक व पात्रानुकूल हैं। पात्रों के मनोभावों की मनोकामना के लिए स्वागत कथन तथा गीतों की योजना केवल मधुकांत के नाटकों में ही देखने को मिलती है। नाटक का मूल उद्देश्य समाज में जागृति लाना होता है। ये नाटक रक्तदान हेतु जन-जागरण के लिए ही लिखे गए हैं और अपने उद्देश्य में पूरी तरह सफल रहे हैं।

समीक्षक : महेन्द्र सिंह 'सागर', फतेहकुंज, एच.पी. पेट्रोल पंप के सामने, कोंट रोड, भिवानी



कृति : अनकहे शब्द
लेखिका : नीरू मित्तल 'नीर'
मूल्य : ₹ 200/-
प्रकाशक : नीरू मित्तल, पंचकूला

नीरू मित्तल 'नीर' का अनकहे शब्द नवप्रकाशित काव्य संग्रह है इसमें 91 कविताएं यह बताती हैं कि यह काव्य संग्रह कवियत्री की बरसों की तपस्या का फल है। दोस्तों, नौकरी करते हुए हम अनेक कार्यों में व्यस्त हो जाते हैं। महिलाओं के लिए तो यह और भी जिम्मेदारी बढ़ जाती है। उन्हें एक ही समय में तीन-तीन मोर्चों पर काम करना होता है। घर-गृहस्थी को चलाना होता है, नौकरी करनी होती है और परिवार को संभालना होता है फिर कहां समय मिल पाता है। नीरू की कविताओं में 'आखिर तुम कौन हो' है। 'काश तूने कहा होता कभी' है। 'जनसमूह' है। 'तेरी याद' है। 'छूट गया फिर कोई अपना' है। 'जिन्दगी मौत बन जाती है' है। 'तुमने क्यों देखा हँसकर' है। 'बेनामी रिश्ते' हैं। 'उठ मानव देख' है। 'सजा ना दे डालूँ' है। 'लॉक डाऊन की जिन्दगी' है। 'कोरोना के बाद' है। कवियत्री ने जिंदगी और समाज को खुली आँख से देखा है। काव्य-संग्रह की सभी कविताएं अच्छी हैं लेकिन कुछ कविताओं ने विशेष रूप से ध्यान आकर्षित किया है। उनमें से 'जीवन' कविता में जीवन की परिभाषा बहुत सुंदर ढंग से दी गई है। 'अंधेरे सारे बिखेर दिए तुमने मेरे आस-पास और कहते हैं इनमें अपना सूरज खोज लो।' काव्य-संग्रह का कला पक्ष भी प्रभावशाली और महत्त्वपूर्ण है। कवियत्री ने उचित रूप से छंदों और प्रतीकों का प्रयोग किया है। भाषा सहज व सरल होते हुए भी प्रभावशाली है। अन्य भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग है। कथ्य व भाषा में संतुलन है। मुझे आशा है कि कवियत्री भविष्य में अपनी सोच और विचार को और व्यापकता प्रदान करेंगी।

समीक्षक : प्रेम जि, 1284, सेक्टर 37-बी, चंडीगढ़

वो अनुशासन प्रिय टीचर
 और कभी दिख ही जाती है
 कॉरीडोर में, जल्दी जल्दी चलती,
 नाखूनों से सूखा आटा झाड़ते,
 सुबह जल्दी में नहाई
 अस्पताल मे आई वो लेडी डॉक्टर
 दिन अक्सर गुजरता है शहादत में
 रात फिर से सलीब होती है...
 सच है, औरतें बेहद अजीब होती हैं
 सूखे मौसम में बारिशों को
 याद कर के रोती हैं
 उम्र भर हथेलियों में
 तितलियां संजोती हैं
 और जब एक दिन
 बूंदें सचमुच बरस जाती हैं
 हवाएँ सचमुच गुनगुनाती हैं
 फिजाएँ सचमुच खिलखिलाती हैं
 तो ये सूखे कपड़ों, अचार, पापड़
 बच्चों और सारी दुनिया को
 भीगने से बचाने को दौड़ जाती हैं...
 सच है, औरतें बेहद अजीब होती हैं ।
 खुशी के एक आश्वासन पर
 पूरा पूरा जीवन काट देती हैं
 अनगिनत खाईयों को
 अनगिनत पुलों से पाट देती हैं.
 सच है, औरतें बेहद अजीब होती हैं ।
 ऐसा कोई करता है क्या ?
 रस्मों के पहाड़ों, जंगलों में
 नदी की तरह बहती...
 कोंपल की तरह फूटती...
 जिन्दगी की आँख से
 दिन रात इस तरह
 और कोई झरता है क्या ?
 ऐसा कोई करता है क्या ?
 सच मे, औरतें बेहद अजीब होती हैं..

-गुलज़ार



पागल लड़की का प्रेम गीत

मूल : सिल्विया प्लाथ

मैं आँखें बंद करती हूँ और सारी दुनिया मृत पड़ जाती है;
 मैं पलकें उठाती हूँ और सब फिर पैदा हो जाता है.
 (मैं सोचती हूँ मैंने तुम्हें अपने मन के भीतर गढ़ा था ।)

सितारे नाचते चले जाते हैं नीले लाल
 और बेतरतीब कालापन सरपट दौड़ता आता है:
 मैं आँखें बंद करती हूँ और सारी दुनिया मृत पड़ जाती है

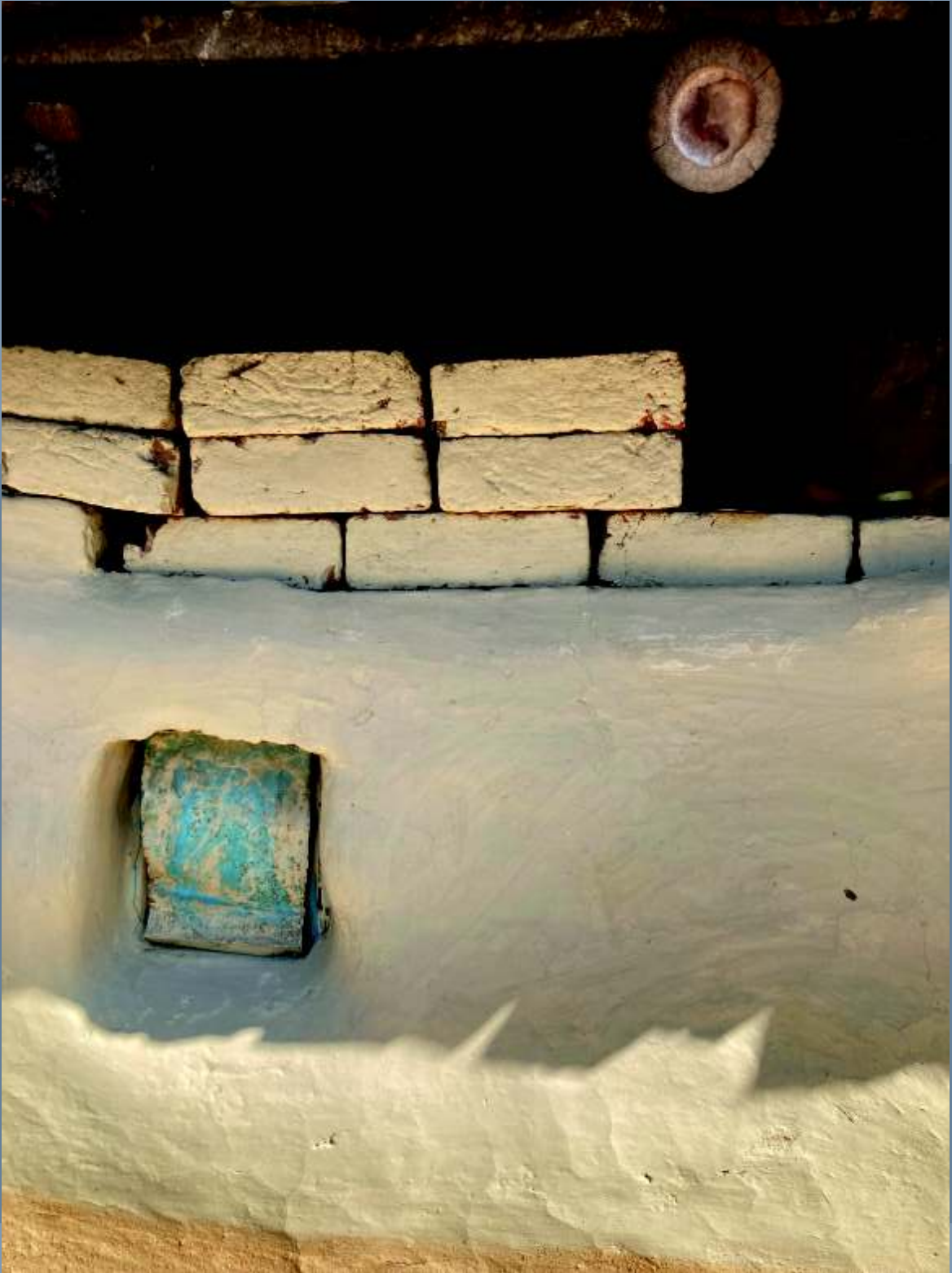
मैंने सपना देखा कि तुम जादू डाल मुझे बिस्तर पर ले गये
 और गाकर मुझे मदहोश कर दिया, चूम चूम कर पागल कर दिया ।
 (मैं सोचती हूँ मैंने तुम्हें अपने मन के भीतर गढ़ा था)

ईश्वर लुढ़कता है आसमान से, नर्क की आग मुरझाने लगती है:
 कूच कर जाते हैं शिशु देवदूत और शैतान के लोग:
 मैं आँखें बंद करती हूँ और सारी दुनिया मृत पड़ जाती है.

मैंने सोचा तुम लौटोगे जैसा तुमने कहा था,
 लेकिन मैं बूढ़ी हो रही हूँ और भूल रही हूँ तुम्हारा नाम.
 (मैं सोचती हूँ मैंने तुम्हें अपने मन में गढ़ा था.)

मुझे वास्तव में गर्जनपाखी से प्रेम करना चाहिए था;
 कम से कम वसंत में तो वे फिर से गरजते आते हैं ।
 मैं आँखें बंद करती हूँ और सारी दुनिया मृत पड़ जाती है ।
 (मैं सोचती हूँ मैंने तुम्हें अपने मन में गढ़ा था ।)

-अनुवाद : अरुण कमल



आवरण पृष्ठ : राम प्रताप वर्मा

प्रकाशक तथा सम्पादक डॉ. चन्द्र त्रिखा द्वारा हरियाणा साहित्य अकादमी, अकादमी भवन, पी. 16, सेक्टर- 14
पंचकूला के लिए प्रकाशित एवं मैसर्स एसोसिएटेड प्रिण्टर्स, 146, प्रेस साईट, इंडस्ट्रियल एरिया, फेस- 1, चण्डीगढ़ से मुद्रित।
पंजीयन संख्या- 42428/86 हरिगंधा, मार्च, 2023, डाक पंजीयन संख्या एच.आर./एबी- 129/22-24